।। श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ।।

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः।।

श्रीसिद्धान्त रत्नाञ्जलिः

प्रणेता

रसिकराजराजेश्वर-श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज
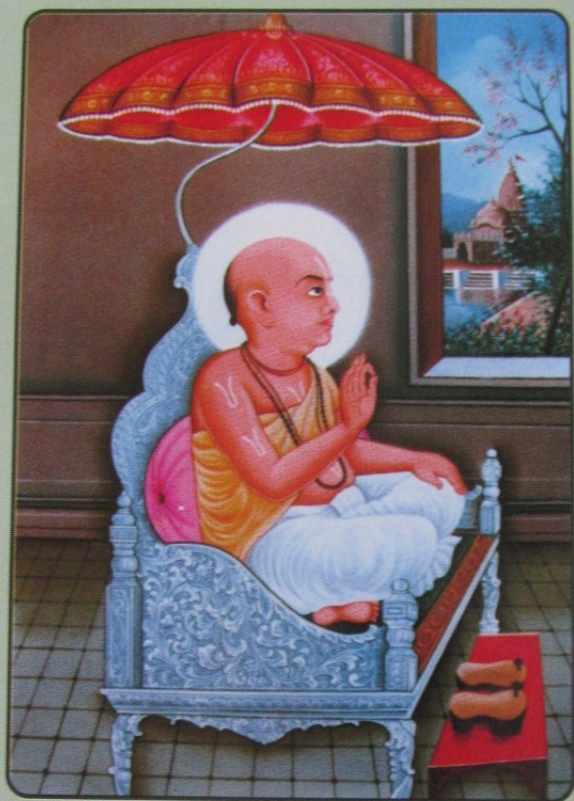
अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य

श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज

* श्रीसर्वेश्वरो जयति *
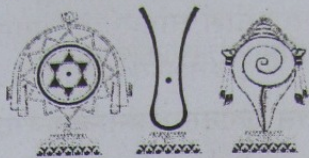
।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

रसिकराजराजेश्वरश्रीमद्हरिव्यासदेवाचार्यप्रणीतः

श्रीसिद्धान्त रत्नाञ्जलिः

हिन्दी व्याख्याकार--

रेवतीरमण शास्त्री साहित्याचार्य

बौंली, राजस्थान

हरिमोहन उपाध्याय

प्राध्यापक-श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबाद

स्थायी - तिलोत्तमा न. पा.१८, रूपन्देही (नेपाल)

प्रकाशक--

विद्वत्परिषद्

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ

सलेमाबाद, पुष्करक्षेत्र, किशनगढ जि. अजमेर (राज०)

श्रीनिम्बार्क जयन्ती महोत्सव

कार्तिक शुक्ल १५ सोमवार दिनांक १४/११/२०१६

वि० सं० २०७३ श्रीनिम्बार्काब्द ५११२

।। श्रीसर्वेश्वरो जयति ।।

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः।।

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज
की

शुभाशीर्वादात्मक भावाभिव्यक्ति

वस्तुतः जब रसपरब्रह्म सर्वेश्वर श्रीराधामाधव भगवान् की दिव्य प्रेरणा होती है, तभी इस भूतल पर परमाचार्य प्रकट होते हैं। अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज का परम पावन उपदेश रूप में श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य द्वारा प्रणीत ''श्रीवेदान्त-कामधेनु दशश्लोकी'' की संस्कृत व्याख्या ''श्रीसिद्धान्त रत्नाञ्जलिः'' का दर्शन प्राप्त होता है।

आचार्यश्री ने इसमें जो निरूपण किया है, वह यथार्थ में अतीव विलक्षण है। इसी प्रकार आपके द्वारा रचित रसमय रूप ''श्रीमहावाणी'' भी नितान्ततया अनुशीलनीय है।

इन ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य में उक्त ''श्रीसिद्धान्त रत्नाञ्जलिः'' का हिन्दी भाषाकार बौंली (राज.) निवासी श्रीरेवतीरमण शास्त्री साहित्याचार्य का एवं तिलोत्तम न. पा. १८ रूपन्देही (नेपाल) वास्तव्य तथा निम्बार्काचार्यपीठ द्वारा सञ्चालित श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय के प्राध्यापक श्रीहरिमोहन उपाध्याय शास्त्री का हिन्दी भाषा करने में योगदान अति प्रसंशनीय है, साथ ही इसके मुद्रण कार्य में श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय में सेवारत ऋषिकुमार शर्मा जासरावत का भी कार्य परम अनुकरणीय है। यथार्थ में ये सभी परम धन्यवादार्ह हैं।

मिति-भाद्रकृष्ण ८ गुरुवार श्रीकृष्णजन्माष्टमी महोत्सव
वि. सं. २०७३ दिनांक - २५/८/२०१६

--श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

आभार अभिव्यक्ति

प्रातःस्मरणीय युगलचरणारविन्दमकरन्द सर्वेश्वर श्रीराधाकृष्ण की असीम अनुकम्पा एवं परम स्नेही वैष्णवजनों के पावन सान्निध्य से भक्ति मार्ग में प्रेरित होकर हृदय में दिव्य आनन्द की अनुभूति हो रही है। जयपुर नगर, जिसमें निम्बार्क सम्प्रदाय की संस्था ''श्रीसर्वेश्वर संसद्'' जिसके संरक्षक अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज हैं, हमारा परिवार इसके साथ सन्निहित एवं संलग्न हुआ। हम ''श्रीसर्वेश्वर संसद्'' की प्रमुख शाखा ''श्रीनिम्बार्क संत्संग मण्डल'' द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में सपरिवार भाग लेते हैं। हमने अपने पूज्य पिताजी गोलोकवासी श्रीदीनदयालजी सोमानी अध्यक्ष-श्रीसर्वेश्वर संसद्, जयपुर की स्मृति में पूर्वाचार्य प्रवर रसिकराजराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्य प्रणीत ''श्रीसिद्धान्त रत्नाञ्जलि'' की हिन्दी व्याख्या सहित प्रकाशन का मनोरथ प्रातःस्मरणीय गुरुवर्य अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वर-शरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज के श्रीचरणों में समर्पित की। पूज्य श्रीआचार्यचरणों ने सहर्ष कृपा कर मंगल आशीर्वाद सहित पुस्तक प्रकाशन की आज्ञा प्रदान कर इस पुनीत संकल्प को सिद्धि प्रदान की।

आप समस्त समादरणीय वैष्णव रसिकजनों से विनम्र प्रार्थना है कि इस सिद्धान्त ग्रन्थ के सदुपयोग द्वारा सेवा स्वीकार कर कृतार्थ करें।

विनीत-
श्यामसुन्दर दीपक सोमानी
जयपुर

सिद्धान्तरत्नाञ्जलि का अवदान

श्रीनिम्बार्काचार्य परम्परा में रसिकराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्य मध्यमणि के समान आचार्य परम्परा को आलोकित कर रहें हैं। आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् ने ''वेदान्तदशश्लोकी'' में वेदान्त के सार को निबद्ध किया। उसी का पल्लवन वेदान्तमञ्जूषा में विस्तार से हुआ। आचार्य हरिव्यासदेवाचार्यजी ने अति विस्तार का परित्याग करते हुए दशश्लोकी के रहस्य को सिद्धान्तरत्नाञ्जलि में शास्त्रीय स्वरूप की रक्षा करते हुए प्रकट किया। ग्रन्थ के अनुबन्ध चतुष्ट्य का वर्णन किया। साधनचतुष्टय सम्पन्न हरि में भक्ति रखने वाला जिज्ञासु ही शास्त्र का अधिकारी है। समस्त वेदों से वेद्य श्रीकृष्ण प्राप्ति ही साधक का परम प्रयोजन है तथा स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोष, अखिल गुणों के राशि श्रीकृष्ण ही प्रतिपाद्य विषय हैं। प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों ने ''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'' ''तं त्वोपनिषदं पुरुषं पृच्छामि'' ''नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति'' ''निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति'' ''वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'' इत्यादि उपनिषद् वाक्यों का सम्यक् अर्थ करते हुए प्रतिपादित किया है कि श्रीकृष्ण तत्त्व जो राधामाधव स्वरूप युगलस्वरूप है वही वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय है। प्रेमलक्षणा पराभक्ति (निकुञ्जोपासना) ही उसकी प्राप्ति का परम साधन है। ज्ञानस्वरूप, हरि के अधीन, प्रतिदेहभिन्न अणुरूप ज्ञातृत्ववान् अनन्त चेतन जीव ही उसे उसी की कृपा से जान सकता है। श्रुति ने चेतन जीव और चिद्रूप परब्रह्म स्वरूपराधामाधव युगल को भिन्न-भिन्न स्वीकार किया है। जैसा कि ''द्वासुपर्णा सयुजा सखाया'' यह श्रुति वचन है। अचेतन तत्त्व माया जो हरि के अधीन है जीव के लिए भोग्य सामग्री प्रस्तुत करती है वह हरि को व्याप्त नहीं करती है। आचार्यों के मत में परमतत्त्व ब्रह्म को विष्णु, हरि, राधा-माधव-श्रीकृष्ण आदि नामों से कहा जाता है यह सगुण स्वरूप है। श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी ने ब्रह्म विषयक नानाविध विरुद्ध मतों का यहाँ खण्डन किया है विशेषतः ब्रह्म को निर्धर्मक मानने वालों का। आचार्य के प्रमाण और युक्तियाँ अकाट्य हैं। ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' का रहस्य प्रकट करते हुए आचार्य लिखते हैं कि ज्ञान उपासनात्मक है तथा उपास्य सगुण रूप है न कि निर्गुण, निर्धर्मक, श्रुति का भी प्रमाण है--

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा है--

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

वस्तुतः परब्रह्म शब्द का अर्थ पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही है इसीलिए निम्बार्क भगवान् की वाणी है--''स्वभावतोऽपास्त...ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।'' भगवान् ने यहाँ 'ध्यायेम' पद का प्रयोग करके यह निश्चित किया है कि ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' इस व्यास सूत्र में जिज्ञासा से जो वाञ्छित अर्थ है वह ध्यानरूप है इसीलिए ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'' कहते हुए निदिध्यासन का आदेश दिया गया है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यश्री ने इस परब्रह्म, पुरुषोत्तम, श्रीकृष्ण, आत्मतत्त्व को युगलस्वरूप माना है। श्रीराधा श्रीकृष्ण की स्वरूपशक्ति है, राधा के बिना कृष्ण के स्वरूप का निर्धारण ही नहीं होता है जैसे दाहकता के बिना अग्नि के स्वरूप का। इसीलिए भगवान् निम्बार्क ने ''अङ्गे तु वामे.... स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्'' श्लोक में श्रीराधाजी का स्मरण किया है तथा उपासकों को यह उपदिष्ट किया है कि युगलोपासना ही सर्वोत्कृष्ट है।

आचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी ने सिद्धान्त रत्नाञ्जलि में अर्थपञ्चक का भी विस्तार से वर्णन किया है। यह ग्रन्थ निम्बार्क वेदान्त के रहस्यों को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। निम्बार्काचार्य जगद्गुरु श्रीराधासर्वेश्वर-शरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज की अनुकम्पा से प्रकाश्यमान ग्रन्थ का अन्तिम प्रूफ देखने का अवसर प्राप्त हुआ। यह ग्रन्थ ९० वर्ष पूर्व वृन्दावन से व्रजभाषानुवाद सहित प्रकाशित हुआ था। आज जैसी सुविधा (कम्प्यूटर) उपलब्ध न होने के कारण त्रुटियाँ स्वाभाविक थीं। हमने हिन्दी अनुवादकों के साथ बैठकर संस्कृत पाठ का शुद्ध स्वरूप यथाशक्ति निर्धारित किया तथा हिन्दी अनुवाद में परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं परिमार्जन किया जिसे अनुवादकद्वय ने उदार भाव से स्वीकार किया। अनुवादक बहुत ही धन्यवाद के पात्र हैं। श्री ''श्रीजी'' महाराज की कृपा से ग्रन्थ के अध्ययन का सुअवसर मिला। अतः आपश्री के चरणों में प्रणामाञ्जलि।

श्री श्रीजी महाराज का कृपाकांक्षी-

डॉ. दूलीचन्द शर्मा
प्राचार्य-श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय
निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबाद

गुरु पूर्णिमा महोत्सव
संवत् २०७३ दि. १९/७/२०१६

निवेदन

जगद्गुरु निम्बार्काचार्य परम्परा में ३४ वें आचार्य श्रीश्रीभट्टदेवाचार्यजी महाराज के परम शिष्य रसिकराजराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज ३५ वें आचार्य हैं। आपके द्वारा विरचित ''श्रीमहावाणी'' अत्यन्त प्रसिद्ध एवं वैष्णवजनों का प्रिय ग्रन्थ है। विशेषतः श्रीधाम वृन्दावन में इसका अत्यन्त भक्तिभाव के साथ समाज गायन होता है। आपके अत्यन्त तेजस्वी १२ शिष्य थे जिनमें से श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज ने आपसे श्रीसनकादि संसेव्य श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा प्राप्त की एवं श्रीगुरुदेव की आज्ञा से पुष्करक्षेत्र में आकर निम्बार्कतीर्थ में निम्बार्काचार्यपीठ की स्थापना की। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज ने भगवन्निम्बार्काचार्य विरचित वेदान्तकाम-धेनु दशश्लोकी पर ''सिद्धान्त रत्नाञ्जलि'' नामक व्याख्या की है। वर्तमान जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री ''श्रीजी'' महाराज को श्रीधाम वृन्दावन से व्रजभाषा में अनूदित अत्यन्त दुर्लभ एक प्रति ''सिद्धान्त रत्नाञ्जलि'' प्राप्त हुई। यह ग्रन्थ पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दो खण्डों में प्रकाशित था। वि. सं. १९८३ में वृन्दावन से प्रकाशित ''सिद्धान्त रत्नाञ्लि'' का वरसाना निवासी श्रीहंसदासजी ने व्रजभाषा में ''भाषाकान्ति प्रकाशिका'' नामक अनुवाद किया था। पूज्य आचार्यश्री की इच्छा हुई कि यह ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद के साथ पुनः प्रकाशित हो। हिन्दी अनुवाद के लिए हमें (रेवतीरमण शास्त्री एवं हरिमोहन उपाध्याय) आपश्री की आज्ञा प्राप्त हुई। हमने देखा कि व्रजभाषा में तो अनुवाद है ही इसलिए अधिक कठिनता नहीं होगी हिन्दी अनुवाद करने में और अनुवाद आरम्भ किया।

जैसे-जैसे अनुवाद का कार्य आगे बढा हमें इसकी जटिलता का आभास हुआ। हमने जिस प्रकार की आशा की थी उस प्रकार व्रजभाषा से हमें अधिक लाभ नहीं मिला। व्रजभाषा को समझना संस्कृत से कठिन हो गया। प्राचीन छपाई की अशुद्धियों ने भी हमारी बहुत परीक्षा ली। अनुवाद की सार्थकता इसी में है कि मूल और अनुवाद में तारतम्य हो। पूज्य आचार्यश्री के शुभाशीर्वाद से किसी प्रकार यह कार्य सम्पन्न हुआ।

श्रीसुदर्शनचक्रावतार भगवन्निम्बार्काचार्य द्वारा विरचित वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी सम्पूर्ण श्रुतिस्मृतियों का साररूप है। परवर्ती आचार्यों एवं विद्वान् मनीषियों द्वारा इसकी ६० से अधिक व्याख्याएँ की गई हैं। इनमें से एक प्रस्तुत सिद्धान्त रत्नाञ्जलि है जो अत्यन्त प्राञ्जल भाषा में श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज ने सकलजनहिताय रचना की है। इस ग्रन्थ को सकलजनहिताय इसलिए कहना उपयुक्त है क्योंकि अधिकतर ग्रन्थों में दार्शनिक एवं बौद्धिक गूढ चिन्तन किया गया है जिसमें सामान्य जन प्रवेश नहीं कर पाते। प्रस्तुत ग्रन्थ में वेदान्त के गूढ रहस्यों को संक्षेप एवं सरल भाषा में निबद्ध करना ही आपकी महिमा की अभिव्यक्ति है।

तत्त्वनिरूपण--

ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में त्रिविध तत्त्व का निरूपण किया गया है। तत्त्व निरूपण तीन परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में चित्तत्त्व का निरूपण है एवं द्वितीय परिच्छेद में अचित्तत्त्व का युक्तियुक्त निरूपण किया गया है। इसी प्रकार तृतीय परिच्छेद में ब्रह्मतत्त्व का निरूपण कर पूर्वार्द्ध समाप्त किया गया है। सारांश में त्रिविध तत्त्व को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है--

१-चित् तत्त्व--

चेतन सत्तायुक्त जीव चित् है। यह ज्ञानस्वरूप एवं धर्मभूत ज्ञान का आश्रय होता हुआ ईश्वर द्वारा नियम्य है। यह अपने शुभाशुभ कर्म के फलों को भोगने वाला एवं भगवान् की अनन्त शक्तिस्वरूपा माया से आवृत्त ज्ञानशक्ति वाला है। यही उपासक जब भगवान् की कृपा प्राप्त कर लेता है तो इस माया से तर जाता है। इस प्रकार जीव के बद्ध, मुक्त आदि भेद एवं अनन्त प्रभेद हैं।

२-अचित् तत्त्व--

माया, प्रधान, प्रकृति आदि नामों से जाना जाने वाला जडस्वरूप अचित् तत्त्व है। प्राकृत, अप्राकृत एवं काल इसके मुख्य तीन भेद हैं। पाँच महाभूत, शब्दादि पाँच तन्मात्रा एवं विषय, मन, बुद्धि, अहंकार सहित दश इन्द्रियां आदि से युक्त प्रपञ्चात्मक देखने सुनने में आने वाला दृश्यात्मक

जगत् प्राकृत है। भगवान् के दिव्यधाम, उनमें वन, उपवन आदि अप्राकृत है। मूल स्वरूप में अखण्ड एवं व्यवहार में भूत, भविष्य, वर्तमान आदि स्वरूप में सखण्ड काल है।

चित् एवं अचित् दोनों पदार्थ सत् एवं नित्य हैं।

३-ब्रह्म तत्त्व--

चित् एवं अचित् दोनों से भिन्न स्वतन्त्र सत्तायुक्त, सृष्टि-स्थिति-लय का हेतु, व्याप्त, कर्तादि दोषों से रहित, अनन्त कल्याण गुणों का आश्रय, श्रीराधाकृष्ण युगलस्वरूप में नित्यलीलानन्दमय, उपास्यदेव ही ब्रह्मतत्त्व है।

स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त--

युक्ति एवं प्रमाणों के द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त को पुष्ट किया गया है। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज ने अद्वैतमत, द्वैतमत, नैयायिकमत, सांख्यमत, वैशेषिकमत, जैनमत, बौद्धमत आदि के पक्षों को उपस्थापित कर श्रुतिस्मृत्यादि प्रमाणों के द्वारा उनका खण्डन एवं स्वपक्ष का प्रबल पोषण किया है। जिस प्रकार गुण और गुणी में, शक्ति और शक्तिमान् में, क्रिया और कर्ता में, अंश और अंशी में अत्यन्ताभेद देखा जाता है परन्तु भेद है यही स्वाभाविक भेदाभेद है जो ब्रह्म में घटित होता है। माया शक्ति है परमात्मा शक्तिमान् है, जगत् क्रिया है परमात्मा अभिन्न-निमित्तोपादान कारणभूत कर्ता है, जीव अंश है परमात्मा अंशी है इसलिए चित्, अचित् एवं ब्रह्म में स्वाभाविक भेदाभेद किंवा स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्ध होता है।

ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में भक्ति की महिमा एवं स्वरूप, गोपीचन्दन की महिमा एवं सम्प्रदायगत ऊर्ध्वपुण्ड्र का स्वरूप, शंख-चक्र-मुद्रा धारणविधि, आठ प्रकार की प्रतिमाओं का वर्णन आदि उपासना के विविध पक्षों का अत्यन्त सरस वर्णन किया गया है।

ग्रन्थ का अनुवाद पूर्ण हुआ परन्तु हमारे सामने समस्या यह थी कि अनुवाद सही है अथवा नहीं। इस अनुवाद को सूक्ष्म रूप से देखकर शोधन का कार्य करके विद्वद्वरेण्य निम्बार्कभूषण डॉ. श्रीदूलीचन्दजी शास्त्री प्राचार्य-

श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्काचार्यपीठ ने महती कृपा की जिनके हम ऋणी हैं। आपने मूल संस्कृत की शुद्धि एवं अनुवाद को दोष रहित करने में जिस प्रकार परिश्रम किया उसको देखते हुए हम इतना ही कह सकते हैं कि यह ग्रन्थ आपके अनुग्रह से इस रूप में आ पाया है।

हम प्रातःस्मरणीय आचार्यश्रीचरणों में दैन्यभाव के साथ कृतज्ञता समर्पण करना चाहते हैं। आपश्री के शुभाशीर्वाद एवं करुणा के कारण इस ग्रन्थरत्न के अनुवाद एवं प्रकाशन के निमित्त बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अन्त में पाठकवृन्द से सविनय निवदेन है कि ग्रन्थ की त्रुटियों में ही हमारा स्मरण करें। इति श्री संवत् २०७३।

विद्वज्जनकृपाकांक्षी-

रेवतीरमण शास्त्री

बौंली, सवाईमाधोपुर

हरिमोहन उपाध्याय

प्राध्यापक-

श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्काचार्यपीठ

सिद्धान्तरत्नाञ्जलिः

पूर्वार्द्धम्

मङ्गलाचरणम्-

श्रीभट्टपादोत्थितधूलिशेषं नत्वाऽखिलेशं निखिलैरुपास्यम्।
निम्बार्कशास्त्रश्रवणालसानां बोधाय यत्नं विदधे सुरम्यम्।।१।।

हिन्दी भावार्थ

ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण का शिष्टाचार निर्वहन करते हुए रसिकराजराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज श्रीगुरुदेव की वन्दना करते हैं-सर्वजनों के इष्ट और वन्दनीय श्रीभट्टदेवाचार्यजी के चरणकमलोत्थित धूल के किंचित् अंश को प्रणाम करके दुर्बोध्य होने के कारण निम्बार्क शास्त्र में जिनकी रुचि नहीं है उनके लिए सुगम्य और सुरम्य प्रयत्न (सिद्धान्त-रत्नाञ्जलिः) की रचना करते हैं।

इह खलु सकललोकमलापनुतये अवनिसुरवरैः प्रार्थितस्य ब्रह्मणो हृदयादवतीर्णः सुदर्शनो निम्बादित्यापरनामा भगवानतिदयालुः परमकारुणिकस्तपोर्थितेभ्यो नैमिषप्रदेशं निर्दिश्य दानवबलं च हत्वा निखिलसात्वतजनानुद्दिधीर्षुर्वेदभाष्याद्यनेकग्रन्थान् कृत्वा वेदान्तसारभूतां दशश्लोकीमपि चकार। तत्र वेदान्तो नाम श्रुतिशिरोभाग ब्रह्मसूत्रगीता-दीनि च सर्वेष्वपि तन्त्रेष्वधिकारिविषयसम्बन्धप्रयोजनानीत्यनुबन्ध-चतुष्टयमपेक्षितम्। तत्र वेदान्तशास्त्रीयानुबम्धचतुष्टयं यथा-

इस संसार में सम्पूर्ण लोक के पाप निवृत्ति के लिए पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों की प्रार्थना से ब्रह्म के हृदय से अवतीर्ण अति दयालु परम कारुणिक भगवान् श्रीसुदर्शन जिनका दूसरा नाम निम्बादित्य है, उन्होंने ब्राह्मणों को तप के लिए नैमिष प्रदेश जाने की आज्ञा देकर दानवों का विनाश कर सकल भक्तजनों के उद्धार की इच्छा से आपने वेदान्त भाष्यादि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया और वेदान्त की सारभूत दशश्लोकी की रचना की। वेदों के शिरोभाग वेदान्त, ब्रह्मसूत्र और गीता आदि सम्पूर्ण शास्त्रों में अनुबन्ध

चतुष्टय अर्थात् १-अधिकारी २-विषय ३-सम्बन्ध ४-प्रयोजन अपेक्षित है। उनमें वेदान्त शास्त्रीय अनुबन्ध चतुष्टय प्रस्तुत करते हैं।

नित्यो हि स्वाध्यायो-अध्येतव्य इत्यध्ययनविधिः। ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति वचनात्। काम्यत्वे हि वेदस्यान्योन्याश्रयता स्यात्। अतः सर्वोऽपि नित्यविधिबलादेव षडंगसहितं वेदमधीत्यार्थं जानाति तत्र कश्चित्पुण्यपुञ्जवशान्निरतिशयपरमपुरुषार्थ-प्रेप्सायां तदुपायं वेदेऽन्विष्य इदमगवच्छति शान्तो दान्तस्तितिक्षुरुपरत आत्मन्येवात्मानं पश्येत्। तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते। परीक्ष्यकर्मचितांल्लोकान्ब्राह्मणो निर्वेदमायात् नास्त्यकृतः कृतेन स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मन इति।

नित्य स्वाध्याय अध्ययन करना अध्ययन विधि है। ''ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च'' इस श्रुतिवचन के अनुसार ब्राह्मण के द्वारा निष्कारण धर्म स्वरूप षडङ्ग वेदों का अध्ययन करना चाहिये और उनको जानना चाहिये। इसलिए नित्य स्वाध्याय का अर्थ है षडङ्ग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त सहित वेदों को नित्य विधि के बल से अध्ययन कर उनके अर्थ को जानने वालों में से कोई पुण्य पुञ्ज के बल से निरतिशय परम पुरुषार्थ की इच्छा वाला होकर उसका उपाय वेद में ढूँढता है और वह पुण्यात्मा शान्त-दान्त, तितिक्षु, उपरत और आत्मा को आत्मा में देखने वाला हो जाता है। इन्द्रियों को जीतने वाले को शान्तोदान्त कहते हैं। तितिक्षु सहनशील को और उपरत वैराग्यवान् को कहा जाता है। आत्मा को आत्मा में देखने का अर्थ है स्वयं का ज्ञान होना। जिस प्रकार इस संसार में कर्म के सञ्चित फल नष्ट होते हैं उसी प्रकार परलोक में पुण्य के सञ्चित फल नष्ट होते हैं। ऐसे नाशवान् कर्म फलों को जानकर ब्राह्मण उपरत हो जाए और कर्म से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है ऐसा जान ले। फिर वह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास समित्पाणि (हाथ में समिधा) लेकर जाए और उनसे भगवत्प्राप्ति का उपाय बताने का निवदेन

करे। जिसकी भगवान् के प्रति परम भक्ति हो और गुरु के प्रति भी वैसी ही भक्ति हो तो उस महात्मा को वेदान्त का ज्ञान प्रकाशित होता है। ऐसा कहा गया है।

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान्। अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुमुनिमुपव्रजेत्। मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम्। अमान्य-मत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः। असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघ वागित्यादि श्रुतिस्मृत्युक्त साधनचतुष्टयसम्पन्नोऽधिकारी। साधनचतुष्टयं च शमदमादि सम्पत् नित्यानित्यवस्तुविवेकः। इहामुत्रार्थफलभोग विरागः। हरौ रतिश्चेति शमदमोपरतिस्तितिक्षा श्रद्धा च शमादयः। शमस्तावद्बुद्धेर्भग-वन्निष्ठता शमो मन्निष्ठता बुद्धेरिति भगवदुक्तेः। दमो बाह्येन्द्रियसंयमः।

स्मृति प्रमाण दर्शाते हैं-''दुःखोदर्केषु....'' जिज्ञासु को दुःख ही जिसका फल है ऐसे विषयों से जब वैराग्य उत्पन्न हो जाए और मेरा धर्म नहीं जानता हो तो गुरु के समीप जाए.. मेरे को जो अच्छी रीति से जाने'' मुझमें जिसकी अनुरक्ति हो ऐसे शान्त गुरु की उपासना करे इत्यादि भगवद्वचन हैं। शिष्य के लक्षण बताते हैं-शिष्य मान की आशा न करें, दूसरे के उत्कर्ष से ईर्ष्या न करें, चतुर हो, संसार के प्रति ममता न हो, गुरु के प्रति दृढ प्रीति हो, सहसा कोई कार्य न करें (अति सत्वरः) गुण में दोष दृष्टि न हो, व्यर्थ न बोले एवं अर्थ को जानने की इच्छा वाला हो। ऐसा शिष्य श्रुति स्मृति में बताए अनुसार अर्थात् स्वाध्यायी शान्तोदान्त, तितिक्षु, उपरत साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हो तो वेदान्त का अधिकारी होता है। शमदम, उपरति, तितिक्षा और श्रद्धा साधन चतुष्टय हैं। शमदमादि सम्पत्ति से युक्त, नित्यानित्य वस्तुओं के प्रति विवेकशील, इहलोक और परलोक के फलों की इच्छा न रखने वाला व हरि में रति वाला हो। भगवान् में बुद्धि की निष्ठा ही शम है इसमें भगवद् वाक्य प्रमाण है-''शमो मन्निष्ठता बुद्धेः....'' अर्थात् मुझमें बुद्धि की निष्ठा शम है। बाह्येन्द्रियों के संयम को दम कहते हैं।

तितिक्षुः क्षमावान् उपरतिः विषयेभ्य उपरामस्तद्वानुपरतः स्वरूपतो गुणतश्च सपिरकरो हरिरेव नित्योऽन्यदनित्यमिति विवेकवान् यथेह कर्मचितो लोको वनितादि क्षीयते प्रणश्यति तथामुत्र स्वर्ग उरवश्य-

मृतादिरपि नश्यत्येवेत्येवं विचार्य ब्राह्मणो जिज्ञासितमद्धर्मः श्रद्धावान् तथा सर्वकामेषु जातनिर्वेदः सन्नर्थजिज्ञासुर्गुरुभक्तिमान् ब्रह्माभिज्ञं गुरुमुपाव्रजेदिति श्रुतिस्मृत्योर्निर्गलितोऽर्थः। स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषा-नन्तकल्याणगुणगणाकरः श्रीकृष्णः शास्त्रविषयः सर्वे वेदा यत्पदमा-मनन्तीति श्रुतेः।

तितिक्षु सहनशील को कहते हैं। विषयों से जिसे वैराग्य हो गया वह उपरत है। हरि ही अपने स्वरूप गुण और पार्षद सहित नित्य हैं और उनके अतिरिक्त सब अनित्य है ऐसा विवेकवान् अर्थात् जिस प्रकार इस संसार के धन, जन आदि नष्ट हो जाते हैं वैसे ही स्वर्ग के उर्वशी, अमृत आदि भी नाशवान् हैं ऐसा जानकर ब्राह्मण मेरे धर्म के प्रति जिज्ञासु हो और श्रद्धालु हो। ऐसा वैराग्य युक्त शिष्य ब्रह्म को जानने वाले गुरु के पास जाए यह श्रुति-स्मृति का आशय है। स्वभाव से समस्त दोषों से रहित अनन्त कल्याण गुणगणों के भण्डार श्रीकृष्ण शास्त्र के विषय हैं इसमें श्रुति प्रमाण है ''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'' अर्थात् सभी वेद जिनके चरणों का स्मरण करते हैं।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य इति स्मृतेश्च। कृष्णप्राप्तिरेव प्रयोजनं वाच्यवाचकभावसम्बन्धः। कृष्णप्राप्तौ चत्वारि प्रतिबन्धकानि, तानि च विषयभोगवासना, प्रमाणगतासंभावना, प्रमेयगतासंभावना, विपरीत भावनाख्यानि। तत्र श्रवणाङ्गभूताः शमादयो विषयाशक्तेर्निवर्त्तकाः। श्रवणं प्रमाणगतासंभावनायाः प्रमेयगतासंभावनाया मननं विपरीतभाव-नायाश्च निदिध्यासनं निवर्त्तकमिति। अतः श्रवणादि संपादनेना-संभावनादि प्रतिबन्ध परिक्षयाय चतुर्लक्षणी ब्रह्ममीमांसा समारम्भि भगवता कृष्णद्वैपायनेन तस्माच्छमादि सहितेन मुमुक्षुणा गुरुमुपसृत्य भगवत्प्राप्तिप्रतिबन्धासंभावनादि निवृत्तये-

श्रीकृष्ण शास्त्र के विषय हैं इस बात को स्मृति से स्पष्ट करते हैं-''वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्य'' अर्थात् भगवान् गीता में कहते हैं-वेदों से जानने योग्य मैं ही हूँ। शास्त्रों में कृष्ण की प्राप्ति ही प्रयोजन है इसलिए विषय और प्रयोजन इन दोनों में वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध है। श्रीकृष्ण की प्राप्ति में चार बाधाएं हैं। विषय भोग की वासना, प्रामाणिक शास्त्र में शंका, प्रमेय

अर्थात् श्रीकृष्ण में शंका, विपरीत भावना। इनमें विषय भोग की वासना को साधन चतुष्टय दूर करते हैं। प्रमाण में जो शंका है वह श्रवण से दूर हो जाती है। प्रमेय में शंका मनन से दूर होती है और विपरीत भावना ध्यान से दूर होती है। इसलिए श्रवणादिक सम्पादन करके असम्भावनादि जो भगवान् की प्राप्ति में प्रतिबन्धक है उनके नाश के लिए भगवान् श्रीवेदव्यासजी ने चतुर्लक्षणी ब्रह्म मीमांसा की रचना की।

-चतुर्लक्षणी मीमांसागीतोपनिषद्भिरात्मनात्मापरमात्मविचारः कर्त्तव्य एवं निरूपणीयपदार्थत्रये जीवात्मनिरूपणे शास्त्रसंस्कारवर्जिता विचारविरहिता प्रत्यक्षमेव प्रमाणमाश्रित्य चैतन्यमानी देह इह आत्मेति-वदन्ति। तथैव भूतचतुष्टयमात्रतत्त्ववादिनो लोकायतिकाश्च। अन्ये तु सत्यपि शरीरे चक्षुरादिभिर्विना रूपादि ज्ञानाभावादिन्द्रियाण्येवचेतनानीत्याहुः। नचैकस्मिन् शरीरे बहूनामिन्द्रियाणां चेतनत्वे य एवाहं रूपमद्राक्षं स एवेदानीं शृणोमीति प्रत्यभिज्ञा न स्यात्। रूपरसादिषु भोक्तृत्वं युगपदेव स्यान्न क्रमेणेति वाच्यम्, एकशरीराश्रयत्वस्यैव प्रत्यभिज्ञा ज्ञानक्रमभोगयो-र्निमित्तत्वात् वरविवाहन्यायेन गुणप्रधानभावात् ।

मोक्ष की इच्छा वाला जिज्ञासुजन गुरु के सन्निकट जाकर भगवद् प्राप्ति के प्रतिबन्धक असम्भवादि दूर करने के लिए चतुर्लक्षणी मीमांसा श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषद् से आत्मा, अनात्मा और परमात्मा का विचार करें। ये तीन पदार्थ निरूपण करने योग्य हैं। इनमें जीवात्मा के निरूपण में जो शास्त्र के ज्ञान से रहित हैं वे विचार विहीन भौतिकवादी प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर चैतन्य विशिष्ट शरीर को ही आत्मा मानते हैं और चार महाभूत अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी को ही मानते हैं। दूसरों का मत है कि शरीर के होते हुए नेत्रादि इन्द्रियों के बिना रूपादिक विषयों का ज्ञान नहीं होता इसलिए इन्द्रियाँ ही चेतन आत्मा हैं। एक शरीर में बहुत सी इन्द्रियों के चेतन होने पर जिस मैंने रूप को देखा वही अब सुनता हूँ ऐसी प्रत्यभिज्ञा नहीं होगी तथा रूपरस आदि में भोक्तापन का भाव भी एक साथ ही होगा न कि क्रमशः ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि एक शरीर के आश्रय के कारण सभी इन्द्रियों के चेतन होने पर भी प्रत्यभिज्ञा होगी तथा

ज्ञान, क्रम और भोग का निमित्त उपलब्ध होने के कारण भोक्तापन का बोध युगपत् नहीं होगा अपितु क्रमशः होगा वरविवाह न्याय के अनुसार गुण प्रधान भाव उपलब्ध होने के कारण। मन से संयुक्त होकर इन्द्रियां जिस क्रम से विषय से जुडेंगी उसी क्रम से ज्ञान और भोग प्राप्त होगा तथा उनमें चेतन तत्त्व के एक होने पर प्रत्यभिज्ञा भी होगी।

अन्ये च स्वप्ने चक्षुराद्यभावेऽपि केवले मनसि विज्ञानाश्रयत्वमहं प्रत्ययावलम्बत्वं चोपलभ्यते। अतश्चक्षुरादिकरणकं शरीराधारं मन एवात्मेति मन्यन्ते। विज्ञानवादिनस्तु क्षणिकविज्ञानव्यतिरिक्त वस्तुनो-ऽभावात् क्षणिक विज्ञानस्यैवात्मत्वमाहुः। प्रत्यभिज्ञा तु ज्वालायामिव सततविज्ञानोदयसादृश्याद्युपपद्यते। माध्यमिकास्तु सुषुप्तौ विज्ञानस्याप्य-दर्शनात् शून्यमेवात्मतत्त्वमिति वदन्ति। न च सुषुप्तौ विज्ञानप्रवाहविषया-वभासप्रसंगान्निरालम्बनज्ञानायोगात् विशेषाभावात्। काणादास्तु देहेन्द्रियादि व्यतिरिक्तो नव विशेषगुणाश्रयो विभुरात्मेत्याहुः।

दूसरे कहते हैं कि स्वप्नावस्था में सब इन्द्रियाँ लय हो जाती हैं तब चक्षुरादि इन्द्रियों के अभाव में भी केवल मन में विज्ञान के आश्रय वाले अहं तत्त्व का अनुभव किया जाता है इसलिए चक्षुरादि इन्द्रियों के आधार शरीर और शरीर का आधार मन होने के कारण मन ही आत्मा है।

विज्ञानवादी तो सुषुप्ति अवस्था में मन का भी लय हो जाता है इसलिए मन भी आत्मा नहीं है ऐसा कहते हैं। उनके मत में क्षणिक विज्ञान के अतिरिक्त किसी का अस्तित्व नहीं है इसलिए क्षणिक विज्ञान ही आत्मा है। जैसे अग्नि की ज्वाला में प्रकाश की निरन्तरता रहती है उसी प्रकार क्षणिक विज्ञान में भी ज्ञानोदय की निरन्तरता देखी जाती है।

माध्यमिक कहते हैं कि सुषुप्ति में विज्ञान का भी दर्शन नहीं होता इसलिए शून्य ही आत्मतत्त्व है। सुषुप्ति अवस्था में विज्ञान का प्रवाह नहीं रहता है क्योंकि विषयों की प्रतीति नहीं होती है, आलम्बन रहित ज्ञान भी नहीं होता है तथा विशेष का अभाव भी रहता है। काणाद मत वाले देह इन्द्रिय आदि से विलक्षण नवगुणविशिष्ट के आश्रय ''विभु'' को ही आत्मा कहते हैं।

मायावादिनस्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभावप्रत्यक्चैतन्य-मेवात्मेति वदन्ति। अन्ये तु शून्यादिव्यतिरिक्तं स्थायिनं संसारिणं भोक्तारमात्मानमाहुः। औपनिषदास्तु ज्ञानानन्दस्वरूपोऽणुरात्मा स च भगवदनुग्रहादानन्त्याय कल्पते इति वदन्ति। तत्रौपनिषत्पक्षे जीवात्मस्व-रूपं निरूपयति भगवानाचार्य्य ज्ञानस्वरूपमित्यादिना।

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः।।१।।

मायावादी नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सत्यस्वभाव प्रत्यक् चैतन्य को आत्मा कहते हैं। कोई और शून्यादि से भी विलक्षण स्थायी और संसारी भोक्ता को आत्मा कहते हैं। उपनिषद् को मानने वाले ज्ञानानन्द स्वरूप अणु परिमाण वाला आत्मा है और वह भगवद् अनुग्रह से मुक्ति प्राप्त करता है ऐसा कहते हैं। इसी उपनिषद् पक्ष को ग्रहण करते हुए भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य "ज्ञानस्वरूपं..." इत्यादि श्लोक से जीवात्मस्वरूप का निरूपण करते हैं।

जीव ज्ञानस्वरूप है और हरि के अधीन है। यह शरीर के संयोग और वियोग के योग्य है। यह अणु परिमाण वाला है। प्रत्येक देह में भिन्न-भिन्न और ज्ञाता जीव को श्रुतियाँ और महर्षिजन अनन्त कहते हैं।

ज्ञानस्वरूपमित्यनेन जीवस्य जडत्वं व्यावृत्तम्। चकारात्तस्य ज्ञानाश्रयत्वमपि बोध्यम्। यथा प्रकाशरूपस्यापि चन्द्रादेः प्रकाशाश्रयत्वं तथा ज्ञानस्वरूपस्यापि ज्ञानाश्रयत्वं युक्तम्। एवमात्मा चिद्रूप एव। चैतन्यगुण इति चिद्रूपता हि स्वयं प्रकाशता तथाहि श्रुतयः "स यथा सैंधवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवात्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति। "न विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते। अथ "योऽयं वेद जिघ्राणीति स आत्मा कतमः। आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यं तज्ज्योतिः पुरुष एव हि द्रष्टा श्रोता रसयिता घ्राता मन्ता बोद्धा विज्ञानात्मा पुरुषः।"

जीव को ज्ञान स्वरूप बतलाकर इसका जडत्व दूर किया गया। चकार से जीव का ज्ञानाश्रयत्व भी समझना चाहिये। जैसे प्रकाश स्वरूप वाले चन्द्रादि पिण्ड प्रकाश का आश्रय भी है इसी प्रकार ज्ञान स्वरूप वाला

जीव ज्ञानाश्रयत्व युक्त है। इस प्रकार आत्मा चिद्रूप है। क्योंकि चिद् रूप ही चैतन्य गुण है। इसलिए चिद् रूप स्वयं प्रकाश है। श्रुति प्रमाण दर्शाते हैं- जिस प्रकार लवण का पिण्ड बाहर भीतर रसरूप है उसी प्रकार आत्मा भी बाहर भीतर समग्र विज्ञान घन है। यह पुरुष आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप है। विज्ञाता की विज्ञान शक्ति का कभी लोप नहीं होता क्योंकि विज्ञान शक्ति अविनाशी है। इस प्रकार जो जानता है वह गन्ध को जानने वाला आत्मा कौन है इस प्रश्न का उत्तर श्रुति देती है कि आत्मा विज्ञानमय है, यह प्राणों में हृद्य अन्तर्ज्योति है, यही पुरुष देखने वाला, सुनने वाला, स्वाद लेने वाला, सूँघने वाला, जानने वाला विज्ञानात्मा है।

"विज्ञातारमरे केन विजानीयाज्ज्ञानात्येवायं पुरुषः न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोतदुःखतां स उत्तमः पुरुषो नोपजनंस्मरन्निदं-शरीरमेवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति।" "तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्माविज्ञानमय" इत्याद्याः।

श्रुति कहती है-"अरे इस विज्ञाता को कौन जानता है? इसको यह पुरुष ही जानता है जो आत्मा को देखता है। वह मृत्यु, रोग व दुःखों को नहीं देखता है। वह उत्तम पुरुष अपने समीप के जनों को अपने शरीर को भी भूल जाता है। अथवा सर्वत्र देखने वाला षोडश कला युक्त पुरुष का लिङ्ग शरीर पुरुष को प्राप्त होकर अन्त हो जाता है अर्थात् जन्म मरण के चक्र में भ्रमण करने वाले कारण शरीर जिसको लिङ्ग शरीर कहते हैं वह शरीर षोडश कला युक्त भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करके नष्ट हो जाता है और वह जन्म-मरण के चक्र में भ्रमण नहीं करता।" अन्य श्रुतियाँ कहती है- "अन्नरसमय शरीर से और मनोमय शरीर से अन्यतर जो अन्तरात्मा है वह विज्ञानमय है।" इत्यादि।

हरेरधीनमिति भगवदनुग्रहजन्यज्ञानक्रियाशक्तिकमित्यर्थः। "कर्तृत्वं करणत्वं च स्वभावश्चेतनाधृतिः यत्प्रसादादिमे सन्ति न सन्तियदुपेक्षयेति" श्रुतेः "द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च। यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षयेति" स्मृतेश्च यस्य भगवतोऽनन्तशक्तेः

श्रीकृष्णस्यानुग्रहादेव द्रव्यादयः सन्ति निजाभिप्रेतकार्य्यसमर्था भवन्ति। यदुपेक्षया यस्यानुग्रहं विना न समर्था भवन्तीति श्रुतिस्मृत्योरर्थः। एतदुक्तं भवति तत्त्वं द्विविधं स्वतन्त्रं परतन्त्रं च। स्वतन्त्रो हरिः अन्यदस्वतन्त्र सत्वं स्वातन्त्र्यमुद्दिष्टं तच्च कृष्णे न चापरे। अस्वातन्त्र्यात्तदन्येषामसत्वं विद्धि भारतेति महाभारतोक्तेः। तत्र परतन्त्रतत्त्वं भावाभावभेदेन द्विविधं प्रथम-प्रतीतौ अस्तीत्युपलभ्यते यः स भावः यश्च नास्तीति प्रतीयते सोऽभावः। तथा च प्रतीतय अत्र घटोऽस्ति, अत्रपटोऽस्ति।। एवंनास्त्यत्र-घटो अस्ति पटाभाव इत्याद्याः।

इस चित् स्वरूप के लक्षण की व्याख्या करते हैं-''हरेरधीनम्'' इसका अर्थ है जीव हरि के अधीन है। भगवान् के अनुग्रह से ही जीव को ज्ञान, क्रिया, शक्ति प्राप्त होती है। जीव को कर्तृत्व करण स्वभाव चेतना व धृति आदि उन भगवान् के प्रसाद से ही प्राप्त होते हैं अन्यथा नहीं। इसमें स्मृति प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। ''द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव भगवान् की कृपा से हैं उनकी उपेक्षा से नहीं। ऐसे अनन्त शक्ति श्रीकृष्ण के अनुग्रह से ही द्रव्यादिक हैं अर्थात् अपने अभिप्रेत कार्य करने में समर्थ होता है अन्यथा नहीं'' इत्यादि श्रुति स्मृतियों से ऐसा समझना चाहिये कि तत्त्व दो प्रकार के हैं जिनमें एक तो स्वतन्त्र है और दूसरा परतन्त्र है। जो स्वतन्त्र तत्त्व है वह भगवान् हरि हैं और भगवान् के अतिरिक्त सब परतन्त्र हैं। अर्थात् सभी भगवान् के अधीन है। महाभारत में कहा गया है-''स्वतन्त्रता उद्दिष्ट सत्व भगवान् श्रीकृष्ण में है।'' इसके अतिरिक्त दूसरों को स्वतन्त्रता के अभाव में असत्व जानो। यहाँ परतन्त्रत्व भावाऽभाव भेद से दो प्रकार का है। ''प्रथम प्रतीति जो है'' ऐसा ज्ञान होता है वह भाव है और जो नहीं है ऐसा प्रतीत होता है वह अभाव है। प्रतीति का उदाहरण है जैसे यहाँ घट है यहाँ पट है आदि। अभाव का उदाहरण है यहाँ घट नहीं है यहाँ पट का अभाव है। इत्यादि।

तत्र चेतनाचेतनभेदेन भावो द्विविधः। चेतयतीति चेतनः। अनेवंविधोऽचेतनः। तत्र चेतनो द्विविधः, मायावृतस्तदनावृतश्चेति। मायासम्बन्धान्मायावृतः। मायाया असम्बन्धादनावृतः, वैनतेयानन्तादि-

समुदायः सर्वशक्तेः सर्वनियन्तुरनयापेक्षमहिमैश्वर्यस्य भगवतो माया अनावृतत्वंस्वाधीनत्वेनैव सिद्धमिति हरेः स्वाधीनत्वम्। तदन्यस्य तदधीनत्वमिति। शरीरसंयोगेत्यादि आत्मकृतकर्मवशाद्यो देहान् प्राप्नोतीत्येवंविधं जीवं विदुरित्यर्थः।। उक्तं च श्रीगीतासु।। वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। शरीराणि च जरायु-जाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाख्यानि। तत्र जरायुजानि मनुष्यपश्वादीनि। अण्डजानि अण्डेभ्यो जातानि पक्षिसरीसृपादीनि। प्रस्वेदाज्जातानि यूकामत्कुणादीनि। उद्भिज्जानि पृथ्वीमुद्भिद्य जातानि वृक्षगुल्मलतादीनि।।

यहाँ चेतनाऽचेतन भेद से भाव दो प्रकार के हैं ''चेतयतीति चेतनः'' जो चेतन कराए वह चेतन है। इसके विपरीत अचेतन है। चेतन भी दो प्रकार के हैं। माया से आवृत्त व माया से अनावृत्त। माया से जिनका सम्बन्ध है वह माया से आवृत्त है और माया से जिनका सम्बन्ध नहीं है वह माया से अनावृत्त है। गरुड़ (वैनतेय) अनन्त (शेष) आदि सर्वशक्तिमान सर्वनियन्ता अनन्यापेक्ष महिमा (जिनकी महिमा परवाह नहीं करती) ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् की माया से अनावृत्त है। फिर भी वे भगवान् के अधीन हैं, इससे हरि की ही स्वाधीनता सिद्ध होती है। उनके अतिरिक्त सभी जीव उन्हीं (श्रीहरि) के अधीन हैं।

''शरीर संयोग वियोगयोग्यम्'' इसकी व्याख्या करते हैं। इसका तात्पर्य है जो अपने किये हुए कर्म के फलस्वरूप अनेक देहों को प्राप्त करता है वह जीव है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है-वासांसिजीर्णानि....। जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्र को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार जीर्ण शरीर को त्यागकर जीव नवीन देह को धारण करता है। शरीर जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज के भेद से चार प्रकार के हैं। उनमें मनुष्य अश्वादि जरायुज शरीर कहे जाते हैं। अण्डे से निकलने वाले पक्षी सरीसृपादि अण्डज हैं और पसीने से उत्पन्न होने वाले यूका (जुंआ) मत्कुण (खटमल) आदि स्वेदज हैं और पृथ्वी को भेद करके निकलने वाले वृक्षलतागुल्मादि उद्भिज्ज है।

अणुमिति। अणुपरिमाणमित्यर्थः। ''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पंचधा संविवेश, अणुर्ह्येष आत्मा यं वा एते सिनीतः पुण्यपापे, बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।। भागो जीवः सविज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते'' इतिश्रुतेः। जीवोऽपकृष्टपरिमाणः, उत्क्रान्तिमत्वात्। खगशरीरवदित्यनुमानाच्च गुणिनोऽणुत्वेऽपि दीपप्रभावद् गुणव्याप्त्या पादे मे सुखं शिरसि मे वेदनेत्यादि युगपदनुभवोपपत्तेः। ननु आश्रयावयवा एव विशीर्णा प्रचरन्तः प्रभेत्युच्यन्ते मैवं मणिद्युमणिप्रभृतीनां विनाशप्रसंगात् दीपेऽप्यवयवविप्रतिपत्तिः कदाचिदपि न स्यात् ।

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने जीव को अणु परिमाण वाला बताया है उसमें श्रुति प्रमाण है-''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो'' यह अणु परिमाण वाला आत्मा चित्त से जानने योग्य है जिसमें पाँच प्रकार के प्राणों ने प्रवेश किया। यह आत्मा अणु स्वरूप है जिसमें पुण्य और पाप बन्धे हैं। ''अणु'' क्या है इसके लिए कहा है-''बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च, भागो जीवः स विज्ञेयः स चाऽनन्त्याय कल्पते'' यह श्रुति प्रमाण है अर्थात् बाल के अग्रभाग के सौंवे हिस्से का सौवां हिस्सा ''अणु'' है इस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म जीव है वह जानने योग्य है और वही मोक्ष के योग्य है। इस प्रकार का सूक्ष्म परिमाण वाला जीव जैसे पक्षी अपने घौंसले में आते जाते हैं उसी प्रकार शरीर में आता जाता है। ''गुणी'' (जीव) परिमाण में तो अणु है परन्तु जैसे दीपक की प्रभा व्यापक होती है उसी प्रकार गुण की व्याप्ति से मेरे पाँव में सुख है और शिर में पीड़ा है यह एक ही बार में अनुभव करता है। इसमें शंका करते हैं कि आश्रय के अवयव ही आश्रय से अलग होकर जो विखरते फैलते रहते हैं वही प्रभा है ऐसा कहें तो यह ठीक नहीं क्योंकि मणि और सूर्य में ऐसा नहीं देखा जाता। यदि प्रभा अवयव की तरह आश्रय से निकलने वाली वस्तु होती तो आश्रय को समाप्त हो जाना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए यह सिद्ध है कि ''दीप की प्रभा'' अवयव नहीं इसकी व्यापकता है। इसलिए दीप में अवयवी की प्रतिपत्ति किसी भी प्रकार से नहीं है।

प्रतिदेहभिन्नमिति। अनेकमित्यर्थः। अनेन एकजीववादो निरस्तो

वेदितव्यः। श्रुतिश्च-''नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामानिति।'' एवं जीवानामीशजीवयोश्च परस्परं भेदोऽपि सिद्धः। नाहं चैत्रो नाहं सर्वज्ञो नाहमीश्वर इत्यनुभवाच्च अहमर्थस्य चात्मत्वमुपरिष्टाद्वक्ष्यामः। ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति। ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे छायातपोब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः। अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मे''-त्यादि श्रुतिश्च परजीवयोः स्वरूपैक्यं निषेधयति--

जीव के ''प्रतिदेहभिन्नम्'' इस विशेषण की व्याख्या करते हैं। यह जीव प्रत्येक देह में भिन्न है अर्थात् जीव अनेक है। इस विशेषण से एक जीववाद को निरस्त किया। इसमें श्रुति प्रमाण है ''नित्योनित्यानां...।'' जो नित्यों का नित्य, चेतनों का चेतन, एक होते हुए भी सबकी कामनाओं को पूर्ण करता है। इस प्रकार जीवों को जीव से जीवों का ईश्वर से परस्पर भेद दिखाया गया। मैं चैत्र नहीं, मैं सर्वज्ञ नहीं, मैं ईश्वर नहीं यह सबका अनुभव है। इसमें जो मैं है उसे अहमर्थ कहते हैं। यह अहमर्थ आत्मा है। इसका बाद में वर्णन करेंगे। अन्यत्र श्रुति कहती है ''द्वासुपर्णा सयुजा---।'' दो पक्षी जो परस्पर सखा हैं दोनों एक साथ एक ही वृक्ष पर बैठे हैं। उनमें से एक वृक्ष के फल स्वाद पूर्वक खाता है और दूसरा भोजन किये बिना स्वयं प्रकाश से परिपूर्ण है। इस श्रुति में वर्णित दो पक्षी इस शरीर में अवस्थित जीवात्मा और उसके अन्तर्यामी परमात्मा को बताते हैं। इस श्रुति में भी स्पष्ट रूप से जीव और ईश्वर में भेद बताया गया ''ऋतं पिबन्तौ.....अन्तः प्रविष्टः...।'' इत्यादि श्रुतियों में भी ईश्वर और जीव का अभेद निषेध किया गया है। पञ्चाग्नि के उपासक ब्रह्मवादी एवं नाचिकेत अग्नि का तीन बार अनुष्ठान करने वाले विद्वान् धूप एवं छांव की तरह जीवात्मा एवं परमात्मा को अपने पुण्य का फल प्राप्त करते हुए बुद्धि रूपी गुहा में प्रविष्ट बताते हैं। अन्तः प्रविष्ट सर्वात्मा जनों का शासक है।

''शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते, भेदव्यपदेशाच्चान्यः, अधिकं तु भेदनिर्द्देशादि''त्यादिषु सूत्रेषु च। ''य आत्मनि

तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोऽयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मा नमन्तरो यमयति प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तः प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ'' इत्यादि श्रुतिभिरुभयोर्व्यक्तिभेदनिर्णयात्षड्विधतात्पर्यलिंगोपेतश्रुतिगम्यो भेदः। परमार्थसन्नेव भवति लिंगानि तु उपक्रमोपसंहाराभ्यासापूर्वताफलार्थ-वादोपपत्त्याख्यानि। लिंगं तात्पर्यनिर्णये प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तदाद्यन्तयो-रुपपादनमुपक्रमोपसंहारौ यथा आथर्वणे। द्वा सुपर्णेत्युपक्रमः परमं साम्यमुपैतीत्युपसंहारः। प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तन्मध्ये पौनः पुन्येन प्रतिपादनमभ्यासः--

उपर्युक्त श्रुतियों में जीवात्मा और परमात्मा के शरीर को भिन्न मानकर अध्ययन किया जाता है और अन्य मतवादी भेद व्यपदेश करके अध्ययन करते हैं। भेद बतलाने वाले भेदनिर्देशात्......इत्यादि सूत्र प्रमाण हैं। और अधिक श्रुति प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। ''यः आत्मनि तिष्ठन्.....।'' जो आत्मा में रहता है और जिसको अपने अन्तरात्मा में यह आत्मा नहीं जानता, जिसका शरीर आत्मा है, जो अन्तर से प्रेरणा करने वाला प्राज्ञ है, जो आत्मा के द्वारा प्राज्ञ भी अन्वारूढ है आलिंगित है। ''प्राज्ञ के द्वारा आत्मा अन्वारूढ है'' इत्यादि श्रुतियों से भी ईश्वर और जीव का भेद ही सिद्ध होता है। छः प्रकार के तात्पर्य लिंग हैं जिनसे श्रुतियों में बताए गए भेद का ज्ञान प्राप्त होता है। परमार्थ के लिए उसको जानना चाहिये। वे छः लिङ्ग हैं--१-उपक्रम उपसंहार २-अभ्यास ३-अपूर्वता ४-फल ५-अर्थवाद ६-उपपत्ति। लिङ्ग के तात्पर्य निर्णय में प्रकरण प्रतिपाद्य वस्तु का आद्यन्त उपपादन करना उपक्रमोपसंहार है। जैसे ''द्वासुपर्णा...।'' इस श्रुति में दो पक्षी यह उपक्रम है और परमसाम्य को प्राप्त होना यह उपसंहार है। प्रकरण में प्रतिपाद्य विषय को बारम्बार प्रतिपादन करना अभ्यास है।

यथा तत्रैव ''तयोरन्यः.. अनश्नन्नन्यः'' अन्यमीशमिति प्रति-पादनं शास्त्रैकगम्येश्वरप्रतियोगिकस्य कालत्रयाबाध्यभेदस्य शास्त्रं विना अप्राप्तेरपूर्वता फलं तु प्रकरणप्रतिपाद्यस्य पूर्वोक्तभेदस्य श्रूयमाणं, प्रयो-जनं यथा पुण्यपापे विधूयेति। प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तत्र प्रशंसनमर्थवादः। यथा तस्य महिमानमेतीतिश्रुतिरूपः। प्रकरणप्रतिपाद्यार्थसाधने तत्र तत्र

श्रूयमाणा''युक्तिः सोपपत्तिः। यथा तत्रैवान्योऽनश्नन्नित्युपपत्तिः। किंचान्तर्यामि ब्राह्मणेऽपि षड्विधतात्पर्यलिंगोपेतं वाक्यं भेदप्रमाणं तथा हि वेत्थ त्वं कायान्तर्यामिणमित्युपक्रमः। एष ते आत्मा अन्तर्यामी-त्युपसंहारः। एष ते आत्मेत्याद्येकविंशतिकृत्वाभ्यासः। अन्तर्यामित्वस्या-प्राप्ततयापूर्वता। स वै ब्रह्मविदित्यादि फलम्। तच्च त्वं याज्ञवल्क्यसूत्र-मविद्वांस्तवांतर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजसे मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति निन्दा-रूपोऽर्थवादो। यस्य पृथ्वीशरीरं यं पृथ्वी न वेदेत्याद्युपपत्तिः। ननु जीवो हि एकस्तस्य कथं नानात्वमुच्यते, स्वप्नवद्बन्धमोक्षगुरुशिष्यादिव्यवस्थोप-पत्तेरितिचेत्, मैवं, तस्मिन्नेकस्मिन् सुप्ते निखिल-जगदप्रतिपत्त्यापत्तेः। सृष्टिमारभ्य प्रलयपर्य्यन्तमसुप्तत्वस्य जीवे असंभवाच्च। परात्तत्वमहं त्वमित्यादिबुद्धिविषयव्यवस्थानुपपत्तेश्च। योगिनः कायव्यूहेनान्तः-करणतादात्म्यारोऽप्येप्यहमित्येव सर्वत्र प्रतीतेश्च। तदन्तः करणस्यैकत्वे बाह्यकरणानामप्यैक्यापत्या कायव्यूहस्यैवाभावः स्यादितिदिक्।

जैसे उसी श्रुति में दो पक्षियों में से जो बिना भोजन किया पक्षी है ''वह ईश्वर है'' यह प्रतिपादन है। शास्त्र से ही जाना जाने वाला ईश्वर त्रिकाल से अबाधित होने के कारण बिना शास्त्र उसकी प्राप्ति नहीं होना अपूर्वता है। प्रकरण प्रतिपाद्य के पूर्वोक्त भेद का श्रूयमाण प्रयोजन फल है। जैसे ''पुण्य पापे विधूय'' इस श्रुति में फल सुनाया गया। प्रकरण प्रतिपाद्य की जहाँ तहाँ प्रशंसा करना अर्थवाद है। जैसे ''तस्यमहिमानमेति'' इस श्रुति का रूप है। प्रकरण प्रतिपाद्य के साधन में वहाँ वहाँ सुनी युक्ति उपपत्ति है। जैसे उसी श्रुति में ''अन्योऽनश्नन्'' ''द्वा सुपर्णा'' इस प्रकार बिना भोजन किये ''अन्य'' यह उपपत्ति है। अन्तर्यामिब्राह्मण ग्रन्थ में भी षड्विध तात्पर्य लिङ्ग युक्त वाक्य भेद के प्रमाण हैं। जैसे तू अन्तर्यामी को जानता है-यह उपक्रम है। यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी है यह उपसंहार है इत्यादि। ''एष ते'' २१ बार प्रयुक्त हुआ यह अभ्यास है। अन्तर्यामित्व की अप्राप्ति से अपूर्वता है। वही ब्रह्म को जानने वाला है इत्यादि फल है। ''वह तू'' जो याज्ञवल्क्य के सूत्र को न जानकर अपने अन्तर्यामी के वेद की श्रुति को तोड़ेगा तो तेरा मस्तक गिर जाएगा। यह निन्दा रूप अर्थवाद है। जिसका

शरीर पृथ्वी है और पृथ्वी जिसको नहीं जानती इत्यादि उपपत्ति है। यहाँ शंका करते हैं-जीव एक ही है इसको आप कैसे अनेक बताते हैं। बन्धन, मोक्ष, गुरु, शिष्यादि व्यवस्था स्वप्न के समान है इसलिए एक ही जीव अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है ऐसा कहें? ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि उनमें से कोई एक सो जावे तो सारे जगत् में सभी को सो जाना चाहिये। ऐसा नहीं होता। सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त कोई भी नहीं सोयेगा तो यह असम्भव है। और मैं तुम अपना पराया इत्यादि बुद्धि के विषय की व्यवस्था नहीं हो सकेगी। योगीजन कायव्यूह के द्वारा अन्तःकरण से तादात्म्य आरोपित करते हैं परन्तु अहं की सर्वत्र प्रतीति होने के कारण यदि एक ही जीव मानेंगे तो अन्तःकरण की एकता में बाह्यकरण की भी एकता हो जायेगी जिससे बाह्य व्यूह सर्वथा असम्भव हो जाएगा। इत्यादि वचनों से जीव अनेक है। यह सिद्ध होता है।

ज्ञातृत्ववन्तमित्यत्रादिशब्दस्याध्याहारो बोध्यः। तथा च ज्ञातृत्व कर्तृत्व भोक्तृत्वादयोऽपि स्वाभाविका धर्मा जीवे सन्तीत्यर्थः। तत्र केचित् गौणाः केचित् स्वरूपभूता इत्यादि विवेकस्त्वन्यत्र द्रष्टव्यः। ननु ज्ञातृत्वं नाम ज्ञानक्रियाकर्तृत्वं तच्च विक्रियात्मकमित्यविक्रियस्यात्मनो न संभवति अपितु अन्तःकरणरूपाहंकारस्य इति चेत् उच्यते, ज्ञातृत्वं हि ज्ञानगुणाश्रयत्वं ज्ञानं चास्य नित्यस्य स्वाभाविकधर्मत्वेन नित्यं स्वयमपरिच्छिन्नं ज्ञानं संकोचविकाशाहम् एतज्ज्ञानमिन्द्रियद्वारेण प्रसरति तत्प्रसरे तु कर्तृत्वमस्त्येव। तच्च न स्वाभाविकमपितु कर्मकृतमित्यविक्रिया-स्वरूप एव आत्मा। एवंरूपमविक्रियात्मकं ज्ञातृत्वं ज्ञानस्वरूपस्यात्मन एवेति न कदाचिदपि जडस्याहंकारस्य ज्ञातृत्वसंभव इतिदिक्।

अब ज्ञातृत्ववन्त इस शब्द को जानना चाहिये। ज्ञातृत्व कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि स्वाभाविक धर्म जीव में है। यही ''ज्ञातृत्ववन्त'' इसका अर्थ है। इसमें कुछ गौण कुछ स्वरूपभूत है। इसका विचार अन्यत्र किया गया है। वहीं देखें। यहाँ शंका है कि ज्ञातृत्व नाम ज्ञान क्रिया कर्तृत्व ये सभी विकारात्मक हैं। इस प्रकार के विकार अविकारी आत्मा में सम्भव नहीं है। अपितु अन्तःकरण रूप अहंकार का ही विकार है। इसका समाधान करते

हैं--ज्ञातृत्व ज्ञान गुण का आश्रय है और ज्ञान इस नित्य जीव का स्वाभाविक धर्म है इसलिए ज्ञातृत्व नित्य है। स्वयं अपरिच्छिन्न ज्ञान संकोच विकास के योग्य है जिसका इन्द्रियों के द्वारा प्रसारण होता है। इस प्रसारण में कर्तृत्व विद्यमान रहता है परन्तु वह स्वाभाविक नहीं होता अपितु कर्म कृत होता है। आत्मा अविकारी है इसी प्रकार ज्ञातृत्व भी अविकारी है क्योंकि ज्ञातृत्व ज्ञान स्वरूप आत्मा का ही रूप है। अहंकार रूपी जड़ का ज्ञातृत्व सम्भव नहीं है। यह सिद्ध हुआ।

एवं ज्ञातृतया सिद्ध्यन्नहमर्थ एव प्रत्यगात्मा न ज्ञप्तिमात्रम्। अहंभावविगमे तु ज्ञप्तेरपि न प्रत्यक्त्वसिद्धिः। एवं चाहमित्येकाकारे-आत्मनः स्फुरणात्सुषुप्तावपि नाहंभावविगमः। एवं हि सुप्तोत्थितस्य-परामर्शः सुखमहमश्वाप्समित्यनेन प्रत्यक्विमर्शेन तदानीमप्यहमर्थस्यैवात्मनः सुखित्वं ज्ञातृत्वं च ज्ञायते। एतावन्तं कालं न किंचिदहमज्ञासिषमित्यत्र न कृत्स्नप्रतिषेधः। अहमवेदिषमिति वेदितुरहमर्थस्यानुवृत्तेर्वेद्यविषयो हि स प्रतिषेधः। ननु मामथाहं न ज्ञातवानित्यहमर्थस्यापि तदानीमनुसंधानं प्रतीयत इति चेत् उच्यते, अहमर्थस्य ज्ञातुरनुवृत्तेर्न स्वरूपं निषिध्यते अपितु प्रबोधसमयेऽनुसन्धीयमानस्याहमर्थस्य वर्णाश्रमादि-विशिष्टता अत्र च जागरितावस्थानुसंहितजात्यादिविशिष्टोऽस्मदर्थो मामित्यंशस्य विषयः स्वापावस्था प्रसिद्धो विशदस्वानुभवैकताश्रयश्चाहमर्थोऽहमित्यंशस्य विषय इति विवेकः। अपिच सुषुप्तावात्माज्ञानसाक्षित्वेनास्त इति हि मायावादिनां प्रक्रिया। साक्षित्वं च साक्षात् ज्ञातृत्वमेव नह्यजानतः साक्षित्वं ज्ञातैव लोकवेदयोः साक्षीति व्यपदिश्यते न ज्ञानमात्रम्। आह च भगवान् पाणिनिः ''साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायामिति'' साक्षात् ज्ञातर्य्येव साक्षिशब्दं अयं च साक्षी जानामीति प्रतीयमानोऽस्मदर्थ एवेति कुतस्तदानीमहमर्थो न प्रतीयते? अन्यथात्मानोऽपि तदानीमप्रकाशापत्तेः। एवं मोक्षदशाया-मपि नाहं भावविगमः--

इस प्रकार ज्ञातृता के द्वारा सिद्ध हुआ कि अहं अर्थ ही प्रत्यगात्मा है ज्ञप्ति मात्र नहीं। अहं भाव न रहे तो ज्ञप्ति में भी प्रत्यक् सिद्ध नहीं है। इस प्रकार अहं और आत्मा की एकाकार से स्फूर्ति होती है। उससे सुषुप्ति

अवस्था में भी अहं भाव बना रहता है। जैसे कोई सोकर उठे और कहे कि मैं सुख से सोया तो इस विचार से उस सुषुप्ति अवस्था में भी अहमर्थ वाले आत्मा ही के सम्बन्ध में सुख का ज्ञातृत्व है। इतने काल पर्यन्त मैं कुछ नहीं जानता था। यहाँ समग्र का प्रतिषेध नहीं है। मैं नहीं जानता था इसमें जानने वाले का अहम् तो बना ही रहता है जानने का जो विषय है उसका ही निषेध है। यहाँ पर शंका करते हैं-ठीक है जानने के विषय का ही निषेध है परन्तु मैं अपने को भी नहीं जानता था इस प्रकार की सुषुप्ति अवस्था में जानने का विषय स्वयं होने के कारण इस समय अहमर्थ का भी अनुसन्धान प्रतीत नहीं होता ऐसा कहें तो? इस शंका का समाधान है कि अहमर्थ ज्ञाता में अनुवृत्त है। इसलिए स्वरूप का निषेध नहीं है अपितु जाग्रतावस्था में अहमर्थ के जो वर्णाश्रमादि विशेषण हैं उसका निषेध करते हैं। और भी जाग्रतावस्था में जात्यादि विशिष्ट जो अस्मद् अर्थ है वह अहं इस अंश का विषय है। स्वप्नावस्था में प्रसिद्ध अपने विशद् अनुभव के एक आश्रय जो अहमर्थ है वह अहं इस अंश का विषय है। "सुषुप्ति में आत्मा ज्ञान का साक्षी है" यह मायावादियों की प्रक्रिया साक्षित्व साक्षात् ज्ञातृत्व ही है। जो नहीं जानता वह साक्षित्व नहीं है। ज्ञाता ही लोक और वेद में साक्षी माना गया है। ज्ञान मात्र नहीं। भगवान् पाणिनि ने भी कहा है-"साक्षाद्द्रष्टरिसंज्ञायां" इस सूत्र से द्रष्टा अर्थ में साक्षात् शब्द को इन् प्रत्यय होकर साक्षी शब्द निष्पन्न होता है। ज्ञाता में ही साक्षी शब्द का प्रयोग है। यह साक्षी मैं जानता हूँ इस प्रतीति में अस्मदर्थ ही है। उस समय अहमर्थ की प्रतीति न हो तो आत्मा का भी प्रकाश नहीं होगा इसलिए मोक्ष दशा में भी अहं भाव का लोप नहीं है।

अहंभावविगमे त्वात्मनाश एवापवर्गो द्रविडमण्डकन्यायेन प्रतिज्ञातः स्यात्। नचाहमर्थो धर्ममात्रं येन तद्विगमेऽप्यविद्यानिवृत्ताविव स्वरूपमवतिष्ठेत। प्रत्युत स्वरूपमेवाहमर्थ आत्मनः ज्ञानं तु तस्य धर्मः। अहं जानामीति ज्ञानं मे जातमिति चाहमर्थधर्मतया ज्ञानप्रतीतेः। एतेन चाहं जानामीत्यस्मत्प्रत्यये योऽनिदमंशः प्रकाशैकरसश्चित्पदार्थः स आत्मा तस्मिंस्तद्बलनिर्भासिततया युष्मदर्थलक्षणोऽहं जानामीति सिद्धय

त्रहमर्थः। चिन्मात्रातिरेकी युष्मदर्थ एवेत्यपास्तम्। अहंप्रत्ययसिद्धोह्यस्म-दर्थः युष्मत्प्रत्ययविषयो युष्मदर्थः। अत्राहं जानामीति सिद्धो ज्ञाता युष्मदर्थवचनं मे माता बंध्येतिवद्व्याहतार्थं च।। किंच तदानीमहमर्था-भावेऽहं निर्दुःखःस्यामित्युत्तरमोक्षराग एव तत्साधने प्रवर्त्तते। स साधनानु-ष्ठानेन यद्यहमेव न भविष्यामि इत्यवगच्छेदपसर्पेदसौ मोक्षकथाप्रस्ताव-गन्धतः।। एवं चाधिकारिणोऽभावादेव सर्वमोक्षशास्त्रमप्रमाणं स्यात्। एतेन मोक्षदशायामहमर्थो नानुवर्त्तत इत्यपास्तम्। मयि नष्टेऽपि मत्तोऽन्यत्किमपि प्रकाशमात्रमवतिष्ठत इति मत्वा तत्प्राप्तये कस्यापि यत्नो न भविष्यति तस्मादहमर्थस्यैव ज्ञातृत्वेन सिद्धयतः--

अहं भाव के नाश होने पर द्रविड़मण्डक न्याय से आत्मनाश ही अपवर्ग (मोक्ष) के रूप में प्रतिज्ञात होगा। अहमर्थ धर्म मात्र नहीं है। जिसके चले जाने पर भी स्वरूप रहे। जैसे अविद्या निवृत्त होने पर स्वरूप स्थिर रहता है, किन्तु अहमर्थ आत्मा का ही स्वरूप है और ज्ञान उसका धर्म है। मैं जानता हूँ, मुझे ज्ञान हुआ इन वाक्यों में अहमर्थ के धर्मरूप में ज्ञान की प्रतीति होती है। इससे मैं जानता हूँ इत्याकारक अस्मत् प्रत्यय में जो इदं से भिन्न अंश प्रकाशैकरस तथा चित्पदार्थ है वही आत्मा है। उस आत्मा में उसके बल से भासित होने के कारण युष्मदर्थ लक्षण वाला मैं जानता हूँ यह अर्थ सिद्ध होता हुआ अहमर्थ चिन्मात्र का अतिक्रमण करने वाला युष्मदर्थ ही होगा इसलिए यह मत खण्डित होता है। क्योंकि अहं प्रत्ययसिद्ध अस्मदर्थ तथा युष्मद् प्रत्यय का विषय युष्मदर्थ है। यहाँ मैं जानता हूँ इससे सिद्ध हुआ ज्ञाता यदि युष्मदर्थ का कथन करने वाला होगा तब यह उक्ति उसी प्रकार से असिद्ध होगी जिस प्रकार से कोई कहे कि मेरी माता बन्ध्या है। यहाँ पर यदि अहमर्थ न हो तो "मैं दुःख से छूट जाऊँ" ऐसे विचार जिससे मोक्ष में राग उत्पन्न होकर उसके साधन में प्रवृत्त होता है। यदि लोगों को ऐसा लगे कि साधन अनुष्ठान करने से "मैं ही नहीं रहूँगा" तो लोग मोक्ष की गंध से भी दूर भागेंगे। यदि ऐसा हुआ तो मोक्ष के कोई अधिकारी भी नहीं रहेंगे, अधिकारी नहीं रहेंगे तो शास्त्र भी नष्ट हो जायेंगे अथवा अप्रामाणिक हो जायेंगे इस प्रकार जो कहते हैं कि मोक्ष दशा में अहमर्थ नहीं

रहता है इस मत का खण्डन किया। मेरे नष्ट हो जाने के बाद मुझसे भिन्न कोई और प्रकाश मात्र शेष रहता है ऐसा मानकर उसकी प्राप्ति के लिए कोई भी उपाय नहीं करेंगे। इसलिए ज्ञातृत्व से अहमर्थ सिद्ध होता है।

प्रत्यगात्मत्वं मुक्तानामपि वामदेवादीनामहमित्येवानुभवाच्च। तथाच श्रुतिः ''तद्वै तत्पश्यनृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवं सूर्य्यश्चेति'' किंच भगवतोऽप्येवमेव व्यवहारः ''हंत!अहमिमास्तिस्रो-देवता बहुस्यां प्रजायेय, स ऐक्षत लोकान्नुसृजा'' इति। तथा ''यस्मात्क्षर-मतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मिंल्लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। नत्वेवाहं जातु नासम्। अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते। तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्। अहं बीजप्रदः पिता। वेदाहं समतीतानि। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचेत्यादि।'' नन्वहमित्येवात्मनः स्वरूपं चेत्तर्हि कथं भगवताहंकारस्य क्षेत्रान्तर्भाव उपदिश्यते। गीतासु महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेवेति चेत् श्रृणु।

ज्ञातृत्व के द्वारा ही सिद्ध प्रत्यगात्मा जो वामदेवादि मुक्तात्मा हैं उनको भी अहमर्थ का अनुभव है। श्रुति प्रमाण है कि-ऋषि वामदेव को मुक्ति के बाद यह ज्ञान हुआ कि ''मैं मनु हुआ मैं सूर्य हुआ'' आदि। अधिक क्या कहें भगवान् का भी यह व्यवहार देखा जाता है ''हन्ताहमिमा..।'' भगवान् हर्ष से कहते हैं कि ये तीन देवता मैं ही हूँ। ''मैं उत्पन्न होकर बहुत हो जाऊँ'' इस संकल्प से माया की ओर देखते हुए लोकों की रचना की। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं-इस क्षर से भिन्न अक्षर है और अक्षर से भी उत्तम मैं हूँ। इसलिए हे अर्जुन लोक और वेद में प्रसिद्ध पुरुषोत्तम मैं ही हूँ। हे गुडाकेश! मैं ही सभी भूतों का आश्रय आत्मा हूँ। ऐसा नहीं है कि मैं पहले नहीं था। मैं इस जगत् की उत्पत्ति स्थितिलय हूँ। मुझसे ही सबकी प्रवृत्ति है। उनको संसार सागर से तारने वाला में ही हूँ। मैं बीज प्रदान करने वाला पिता हूँ। मैं सम्पूर्ण भूतकाल को जानता हूँ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पाप से रहित कर दूँगा तुम शोक मत करो। इत्यादि भगवान् के वाक्यों में जो अहमर्थ है वही आत्मा का स्वरूप है। यहाँ शंका करते हैं यदि अहं आत्मा का ही

स्वरूप है तो भगवान् ने क्षेत्र नामक शरीर के अन्तर्भूत अहंकार का उपदेश कैसे किया? गीता में कहा है कि महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मन सहित इस शरीर को भगवान् क्षेत्र कहते हैं। इसका कारण बताते हैं, सुनो।

सर्वेष्वपि स्वरूपोपदेशेष्वहमित्येवोपदेशादहमित्येव प्रत्यगात्मनः स्वरूपम्। तथैवात्मस्वरूपप्रतिपत्तेश्च अव्यक्तपरिणामभेदस्य त्वहंकार-स्थानमहंकरोतीत्यभूततद्भावे च्विप्रत्ययमुत्पाद्य क्षेत्रान्तर्भावो भगवतोपदि-श्यते। स त्वनात्मनि देहे अहंभावकरणहेतुत्वेनाहंकार इत्युच्यते। अयमेव गर्वापरनामोऽहंकारः। शास्त्रेषु बहुशो हेयतयोच्यते तस्माद्बाधकापेताहं बुद्धिरद्धात्मविषयैव। शरीरविषया त्वहंबुद्धिरविद्यैवेति सिद्धमहमर्थस्या-त्मत्वम्। ननु अनेकजीवत्वादपि कदाचिज्जीवानां समाप्त्या संसारसमाप्तिः स्यादित्याह यदनन्तमाहुरिति नारदादय इतिशेषः। यद्यस्मादनन्ता जीवा-स्तस्मान्नजीवसमाप्त्या संसारसमाप्तिरित्यर्थः।

जहाँ-जहाँ स्वरूप का उपदेश है उन उपदेशों में प्रत्यगात्मा स्वरूप को ही अहमर्थ बतलाया गया है और आत्मा स्वरूप की प्रतिपत्ति और अव्यक्त परिमाण भेद का जो अहंकार है उस ''अनहं'' ''अहं करोति'' इति ''अभूततद्भावे च्विः'' इस सूत्र से च्वि प्रत्यय उत्पादन करके क्षेत्र के अन्तर्भाव अहंकार का उपदेश जो भगवान् ने किया है वह अनात्मभूत देह में अहं भाव करने के अर्थ में है। इस कारण उसको अहंकार उच्चारण करते हैं। इसका दूसरा नाम गर्व भी है इसको शास्त्रों में बहुत प्रकार से त्यागने योग्य बताया है। इस प्रकार बाधा रहित अहं बुद्धि साक्षात् आत्मा के विषय में है। शरीर विषयक अहं बुद्धि तो अविद्या ही है, इस रीति से अहमर्थ का आत्मभाव सिद्ध होता है। फिर भी शंका करते हैं कि तुम्हारा जो जीव को अनेक मानना है तो जब मुक्त होते होते सभी जीव समाप्त हो जायेंगे तो संसार भी समाप्त हो जायेगा इसके समाधान के लिए भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य कहते हैं-जीव अनन्त है। इसलिए जीव का जब अन्त ही नहीं है तो जीवों की समाप्ति नहीं फिर संसार की समाप्ति नहीं।

आहुरित्यनेन प्रमाणसिद्धतां सूचयति। प्रमाणं च स्मृतिः ''अतीतानागतांश्चैव यावतः सहिताः क्षणाः। ततोऽप्यनन्तगुणता जीवानां

राशयः पृथगिति।'' तदेवं जीवस्वरूपं निरूपितं परन्तु अघटघटनापटी-यस्या गुणमय्याः हरेर्मायायाः संसर्गेणान्यथात्वमपि जीवे प्रतीयते तच्च भगवदनुग्रहादेव निवर्त्तत इत्याह मूल अनादीति-

अनादिमायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात्।
मुक्तं च भक्तं किल बद्धमुक्तं प्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम्।।२।।

अनादि-मायया परियुक्तं संयुक्तं संवलितं रूपं स्वरूपं यस्य तमेनं जीवजातम् प्रसादादनुग्रहात् श्रीभगवतः मुक्तं निरतिशयानन्दरूपं मुक्तिमन्तं भक्तं स्वाभाविक्यनिमित्तापरिछिन्नेन्द्रियवन्तं विदुः सनकादय इति शेषः।

आहुः इस पद से श्रुतिस्मृति आदि प्रमाण की सिद्धि सूचित करते हैं। यहाँ पर स्मृति प्रमाण है ''अतीताना..।'' जो अतीत हो गये और जो अभी तक आए ही नहीं वे सभी क्षण इनसे भी अनन्त गुना जीवों की भिन्न-भिन्न राशि विद्यमान है जो कभी समाप्त नहीं होते इस प्रकार जीव स्वरूप का निरूपण किया गया।

उपर्युक्त जीव का स्वरूप होते हुए भी अघटघटनापटीयसी गुणमयी श्रीहरि की माया के सम्बन्ध से जो उलट पलट ज्ञान होता है अर्थात् अपने स्वरूप के साथ भगवद् सम्बन्ध को भूलकर के अहं बुद्धि के द्वारा देह के साथ सम्बन्ध होने के कारण पुत्रकलत्रादि में जो ममता होती है यही उल्टा-पुल्टा ज्ञान है। यह विपरीत ज्ञान भगवान् के अनुग्रह से ही निवृत्त होता है इसके लिए दूसरा श्लोक कहते हैं-अनादिमायापरियुक्तरूपं..। अनादि माया से आच्छादित अपने स्वरूप को भगवान् की अनुकम्पा से ही जीव जानते हैं। इस जीव के अनेक रूप हैं। एक तो मुक्त रूप एवं बद्ध और बद्ध मुक्त है। और भी इसके अनेक प्रभेद हैं। जो अनादि माया के द्वारा ढका हुआ रूप है जीव को इस रूप का ज्ञान भगवान् के प्रसाद से ही प्राप्त होता है। भगवान् की कृपा से मुक्त जीव निरतिशय आनन्द रूप मुक्तिमान् भक्त स्वाभाविक अकारण अपरिच्छिन्न इन्द्रिय वाले स्वरूप को जानते हैं। जैसे सनकादिक नारद।

श्रीभगवदनुग्रहश्च द्विविधः-सर्वदा सुखरूपो मदस्तम्भादिभ्रंशरूप-

श्च। मानस्तम्भादिनिमित्तानां सत्त्वेऽपि तैःपुनर्मोहाभावः प्रथमः, स च प्रियव्रतध्रुवप्रह्लादादिषु। द्वितीयस्तु दृढस्तम्भमानादि संसाररोगवत्स्विन्द्रादिषु यथा श्रीभागवते ''मया तेऽकारि मघवन् मखभंगोऽनुग्रहता। मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्रश्रिया भृश''मिति भगवदुक्तेः। पुनरपि स द्विविधः साधनाधीनः साध्याधीनश्च। आद्यो मन्दीकृतस्तम्भादौ दैन्यसाध्य अन्यसाधनहीनेषु भगवदिच्छापरः। ननु भगवदनुग्रहो व्यापकः परिछिन्नो वा? नाद्यः सर्वेषु तदापत्तेः। नान्त्यः अकिंचित्करत्वादिति चेन्न यतो व्यापकस्यापि भगवदनुग्रहस्य वेदान्तश्रवणादिवासितान्तः करणेन भक्तिमत्येव सम्बन्धो जायते नान्यत्र। यथा तार्किकमते व्यापकस्यापि गोत्वादेः सास्नादिमत्येव सम्बन्धो नान्यत्र तद्वत्। यत्र श्रवणादि न दृश्यते अनुग्रहश्च दृश्यते तत्र जन्मान्तरीयं तत्कल्पनीयम्। किंच ''इयं पृथ्वी जलव्याप्ता सर्वदैवाविशेषतः। निम्नस्थले दृश्यते हि समक्षमुदकं स्वयं कृष्णकृपातन्निसर्गाद्दैन्यनम्रेषु च तथे''ति सनत्कुमारवचनाद्दैन्य-नम्रेष्वेव भगवदनुग्रहो नान्यत्रेति सिद्धम्।

भगवान् के अनुग्रह भी दो प्रकार के हैं। सर्वदा सुखरूप और मानस्तंभादि भ्रंश रूप। जो मानस्तंभादि निमित्त होते हुए भी भगवद् अनुग्रह प्राप्त करके मानस्तंभादि का सर्वथा अभाव होता है उनकी पुनरावृत्ति भी नहीं होती वह सर्वदा सुखरूप अनुग्रह है। ऐसा भगवद् अनुग्रह प्रियव्रत, ध्रुव, प्रह्लाद आदि ने प्राप्त किया। जो दृढ स्तंभमान आदि संसार में रोग के समान भगवान् के अनुग्रह से नष्ट होते हैं किन्तु कालान्तर में पुनः उत्पन्न होते हैं ऐसा भगवद् अनुग्रह मदस्तम्भादिभ्रंशरूप कहलाता है। इन्द्रादि देवताओं पर भगवान् का यह दूसरे प्रकार का अनुग्रह है। श्रीमद्भागवत में इन्द्र के यज्ञ को भङ्ग करके भगवान् कहते हैं-हे इन्द्र, इन्द्र की लक्ष्मी से अत्यधिक मदमस्त रहने वाले तुझे नित्य मेरी स्मृति बनी रहे इसलिए मैंने तुम पर अनुग्रह करते हुए तुम्हारे यज्ञ को भङ्ग किया। और भी अनुग्रह को दो प्रकार के बताते हैं-साधन के अधीन और साध्य के अधीन। इनमें से गर्वादि को क्षीण करके दैन्य भाव से प्राप्त होने वाला साधन के अधीन भगवद् अनुग्रह है जैसे भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य स्वयं ''कृपास्यदैन्यादियुजि प्रजायते'' आदि कहकर

भगवान् की कृपा दैन्यादि गुण वाले पुरुष पर ही होती है ऐसा उपदेश करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। साध्य के अधीन जो भगवद् अनुग्रह है वह मात्र भगवद् इच्छा से ही सम्भव है। जैसे यज्ञ पत्नियों पर अनुग्रह हुआ। यहाँ शंका करते हैं, भगवान् का अनुग्रह व्यापक है अथवा परिच्छिन्न है, यदि व्यापक है तो सब पर होनी चाहिये। यदि परिच्छिन्न (खण्डित) है तो यह दोष युक्त होने के कारण भगवदनुग्रह नहीं हो सकता। इस प्रकार इस शंका का समाधान करते हुए कहते हैं-भगवान् का अनुग्रह व्यापक है। ऐसा होते हुए भी वेदान्त को सुनकर जिनका अन्तःकरण पवित्र होकर भगवद्भक्ति से युक्त हो जाता है उनके सम्बन्ध में ही भगवान् का अनुग्रह दिखाई देता है अर्थात् भगवद् भक्त ही अनुग्रह के पात्र होते हैं। जैसे तार्किकों के मत में ''गोत्वादि'' शब्द व्यापक होते हुए भी सास्नादिमत् पशुओं का ही वाचक है अन्य का नहीं उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये। जहाँ वेदान्त श्रवणादि साधन के विना भी वृत्रासुर एवं गजेन्द्र जिनका शरीर ही तमोगुणी है ऐसे जीवों पर भगवद् अनुग्रह देखा जाता है वहाँ उन जीवों को पूर्व जन्म कृत साधन सम्पन्न समझना चाहिये। जैसे पृथ्वी सदा जल से व्याप्त है तथापि केवल निम्न स्थल पर ही प्रत्यक्ष जल देखा जाता है। उसी प्रकार श्रीकृष्ण कृपा भी स्वभाव से ही दैन्य नम्रता आदि गुण जिनमें हैं उनमें ही देखी जाती है। इस प्रकार भगवद् कृपा से ही जीव को ज्ञान होता है यह सिद्ध है।

अथ बद्धमुक्तप्रभेदबाहुल्यं बोध्यम्। अपिशब्दोऽवधारणे। यद्यपि बद्धमुक्तयोर्मध्ये मुक्तस्यैव प्राधान्यं तथापि प्रत्यक्षत्वाद्बद्धस्य प्रथममुद्देशः। तत्र बद्धाः अनादिकर्मवासनाजन्य-देवतिर्यङ्मनुष्यस्थावररूपचतुर्विध-शरीरतत्सम्बन्धिष्वहंताममतावन्तः। ते च द्विविधाः मुमुक्षवो बुभुक्षव-श्चेति। विविधसांसारिकदुःखसन्दर्शनेन विरक्ताः सन्ताः संसारान्मोक्ष-मिच्छवो मुमुक्षवः। तेऽपि द्विविधा। ज्ञानसाधना भगवत्परिकरसाधनाश्च। तत्र ज्ञानसाधनाः वर्णाश्रमोचित कर्मयोगानुष्ठानसमुत्थितगंगाप्रवाहवदवि-च्छिन्नस्मृतिसन्तानरूप साक्षात्कारपर्यन्तभक्तिनिष्ठावन्तः। ते च द्विविधा उपासका औपनिषदाश्चेति। तत्रोपासकाः श्रीरामचन्द्र-नृसिंह-हयग्री-

वाद्यावतारमन्त्रविहितध्यानपूजनपुरश्चरणादिनिष्ठावन्तः। औपनिषदास्तु श्रवणमनननिदिध्यासनैकनिष्ठाः। एतेषु भगवल्लीलागुणरूपादिसाक्षा-त्कारप्रतिबन्धकान्मोक्षमिच्छावन्तो भावनीयाः। भगवत्परिकरसाधनास्तु ज्ञानकर्मादीनां प्रधानसाधनत्वमनंगीकृत्य करुणावरुणालयं गुरुमेवोपायं मत्वा कञ्चन सम्बन्धविशेषं लब्ध्वा मुक्तिनिश्चयवन्तः--

जीव बद्ध मुक्त भेद से मुख्य दो प्रकार का बताते हैं। इनके प्रभेद अनेक हैं। अपि शब्द अवधारणा अर्थ में है। यद्यपि बद्ध और मुक्त इन दोनों में मुक्त की ही प्रधानता है तो भी बद्ध प्रत्यक्ष होने के कारण पहले इसका ही उपदेश किया गया। अनादिकर्म वासनाजन्य देव, तिर्यक्, मनुष्य, स्थावर आदि चार प्रकार के शरीरों के सम्बन्ध से जिनकी ममता है वे जीव बद्ध हैं। बद्ध जीव दो प्रकार के हैं-१-मुमुक्षु २-बुभुक्षु। विविध सांसारिक दुःख भोग से विरक्त और संसार से मोक्ष की इच्छा वाले सन्त मुमुक्षु कहलाते हैं। ज्ञानसाधना और भगवद् परिकरसाधना के भेद से मुमुक्षु दो प्रकार के हैं। वर्णाश्रम धर्माऽनुसार कर्मयोग अनुष्ठान के द्वारा गंगा प्रवाह के समान अखण्ड स्मृति के द्वारा भगवद् साक्षात्कार पर्यन्त जो मुमुक्षु भक्त निष्ठावान् है उसको ज्ञान साधना कहते हैं। ज्ञान साधना भी उपासक और औपनिषद के भेद से दो प्रकार के हैं। श्रीरामचन्द्र, नृसिंह, हयग्रीव आदि अवतारों का मन्त्र विहित ध्यान, पूजन, पुरश्चरण आदि के प्रति निष्ठावान् मुमुक्षु उपासक है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि में एक निष्ठ मुमुक्षु औपनिषद है। इनमें भगवल्लीला गुण रूपादि साक्षात्कार प्रतिबन्धक न होकर केवल मोक्ष की ही इच्छा होती है ऐसा समझना चाहिये। अब भगवद् परिकर साधना के लक्षण बताते हैं। ज्ञान कर्मादि प्रधान साधनों के बिना करुणावरुणालय गुरु को ही उपाय मानकर कुछ सम्बन्ध विशेष को पाकर मुक्ति निश्चय वाले मुमुक्षु भगवद् परिकर साधना के अन्तर्गत हैं।

एते च सर्वे प्रत्येकं चतुर्विधाः-आर्त्ता जिज्ञासवोऽर्थार्थिनो ज्ञानिनश्च। अथ बुभुक्षवो वैषयिकानन्दमिच्छवः। ते च योग्यायोग्यभेदेन द्विविधाः। तत्र योग्या नाम भगवन्निर्हेतुक कृपाकटाक्षेण भाविनीयोग्य-तावन्तः। अयोग्या द्विविधाः। नित्यसंसारिणो निरययोग्याश्च। तत्र

नित्यसंसारिणो वृक्षादयः। निरययोग्या मनुष्येष्वधमा रक्षः पिशाचादयश्च। ते च द्विविधाः- प्राप्तनिरया अप्राप्तनिरयाश्चेति। अथ मुक्ताः-ते चाज्ञानाध्यस्तदेहादिष्वहंताममतानिवृत्तिपूर्वकस्वरूपप्राप्तिवन्तः। ते च द्विविधाः-नित्यमुक्ताः मुक्ताश्चेति--

मुमुक्षु के जो ऊपर बतलाए गए भेद हैं उन प्रत्येक के आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार प्रकार के भेद बतलाए गए हैं। अब बुभुक्षु के लक्षण बताते हैं। सांसारिक विषय के आनन्द की इच्छा वाले बुभुक्षु जीव हैं। १-योग्य और २-अयोग्य भेद से बुभुक्षु दो प्रकार के हैं। भगवान् के अकारण कृपा कटाक्ष के द्वारा आगे जिनका कल्याण हो उनको योग्य बुभुक्षु कहते हैं। अयोग्य बुबुक्षु नित्य संसारी और निरययोनि के भेद से दो प्रकार के हैं। वृक्षादि नित्य संसारी हैं और मनुष्यों में अधम कर्म वाले राक्षस पिशाचादि हैं ऐसे नरक में पड़ने वाले जीव निरययोनि कहलाते हैं। इन निरययोनि को भी दो प्रकार के बताए गए हैं-१-प्राप्त निरय २-अप्राप्त निरय।

अब मुक्त जीवों के लक्षण बताते हैं। अज्ञान नष्ट होकर देहादि में अहन्ता ममता आदि की निवृत्ति पूर्वक जिन्होंने अपना स्वरूप प्राप्त किया है उनको मुक्त कहा गया है। नित्य मुक्त और मुक्त के भेद से मुक्त दो प्रकार के हैं।

तत्र नित्यमुक्ता नाम गर्भजन्मजरामरणादिदुःखमननुभूय नित्यप्राप्यानन्दानुभवैकरसः यथा नन्दसुनन्दादयः। मुक्तास्तु भगवदनुग्रहेण अनादेरज्ञानात्प्रमुक्ताः सालोक्यसारूप्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यानुभववन्तः। ते च द्विविधा-गुणगानपराः सेवनपराश्चेति। तत्र गुणगानपरा भीष्मादयः सेवनपरास्तु वनमालादिनिर्माणक्रियापराः। एते च देवर्षिमनुष्यराजन्यादिभेदेन प्रत्येकमनेकविधाः। पुनः सर्वेऽप्येते चतुर्विधाः। आर्त्तमुक्ताः जिज्ञासुमुक्ताः अर्थार्थिमुक्ता ज्ञानिमुक्ताश्चेति। तत्रार्तमुक्ताः शिवानुयायिनः, जिज्ञासुमुक्ता ब्रह्मभृग्वादयोऽनुयायिनः, अर्थार्थिनो श्रीलक्ष्मीविष्वक्सेनादयोऽनुयायिनः--

जिन्होंने गर्भ, जन्म, जरा, मरण आदि दुःखों का कभी अनुभव

नहीं किया और जो आनन्दानुभव रूप एक रस का नित्य पान करते हैं ऐसे नन्द सुनन्द आदि भगवान् के पार्षद नित्य मुक्त हैं। भगवान् के अनुग्रह से अनादि अज्ञान रूप अन्धकार से मुक्त होकर सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य को अनुभव करने वाले मुक्त जीव हैं। भगवान् के साथ उनके लोक में रहना सालोक्य है, भगवद् सदृश रूप प्राप्त करना सारूप्य है। सारूप्य में कौस्तुभमणि लक्ष्मी आदि भगवान् के चिह्न नहीं होते। नित्य भगवान् समीप रहना सामीप्य है। भगवद् सदृश ऐश्वर्य का नाम सार्ष्टि है। ये चार प्रकार के मोक्ष अनुभव है। पांचवाँ सायुज्य ब्रह्म में एकाकार को कहते हैं।

मुक्त दो प्रकार के हैं। गुणगान परायण और सेवन परायण। भीष्मादि गुणगान परायण मुक्त जीव हैं, भगवान् के वनमालादि आभूषण निर्माण क्रिया वाले सेवन परायण मुक्त जीव हैं। इनके देवता, ऋषि, मनुष्य, राजा आदि के भेद से प्रत्येक के अनेक भेद हैं और सभी के आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चार-चार भेद हैं।

शिव के अनुयायी और शिव कृपा से मुक्त जीव आर्त्त मुक्त हैं। शिव आशुतोष होने के कारण आर्त्त जीव शिव के ही शरण में जाता है। ब्रह्मा भृगु आदि के अनुयायी जिज्ञासु मुक्त है क्योंकि ब्रह्मा चारों वेदों के उपदेशक हैं, जिज्ञासु को वेदों से ही समाधान प्राप्त हो सकता है। लक्ष्मी, विष्वक् सेन आदि के अनुयायी अर्थार्थी हैं।

ज्ञानिमुक्तास्तु सनकादिनारदनिम्बादित्यानुयायिनः। तत्र नित्यमुक्ताः द्विविधाः-पार्षदा आनन्तर्य्याश्च। पार्षदा गरुडादयः, आनन्तर्य्यास्तु किरीटकुण्डलवंश्यादयः। एतेषां तु पुनरीश्वरेच्छानुगुणितनिजेच्छया विग्रहादिपरिग्रहो मातृपित्रादिसृष्टिरपि भवति। तथाहि श्रुतयः 'स एकधा भवति अपरिमितधा भवति स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति स तत्र पर्य्येति यक्षन्क्रीडन् रममाणः इमांल्लोकान्कामान् कामरूपाननुसंचरन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा-विपश्चितेत्याद्याः। भ्रमति खलु जनो यं संसृतौ मायया ते त्वमतिकरुण ईशः कृष्ण दाता वदान्यः। सततमिदमहं त्वां प्रार्थये दीनदीनो न भवतु

पुनरस्या जातुशक्तेः प्रसारः।।

इतिश्रीपरमहंसवैष्णवाचार्य्यश्रीहरिव्यासदेवविरचितेवेदान्त-सिद्धान्तरत्नाञ्जलौ प्रथम-परिच्छेदः।।१।।

सनकादि नारद निम्बादित्यादि के अनुयायी ज्ञानी मुक्त हैं।

नित्यमुक्त भी दो प्रकार के बताए गए हैं। १-पार्षद २-आनन्तर्य। नन्द, सुनन्द, गरुडादि पार्षद हैं। किरीट, कुण्डल, वलय, वंशी आदि आनन्तर्य हैं। ये नित्य मुक्त जीव कभी भगवान् की इच्छा से अथवा स्वयं की इच्छा से संसार में मातृ-पितृ आदि रूपों में विग्रह धारण करते हैं। परन्तु बद्ध नहीं होते इसमें श्रुति प्रमाण है-स एकधा भवति अपरिमितधाभवति ''वह एक हो सकता है अनेक हो सकता है।'' ''वह यदि पितृलोक की कामना करता है तो संकल्प से ही उसके पितर अपने साथ ले जाते हैं।'' ''नित्य मुक्त जहाँ रहते हैं वहाँ हंसते हुए क्रीडा करते हुए रमण करते हुए इन लोकों में इच्छा रूप धारण करके विचरण करते हैं।'' ''वह ब्रह्म के साथ सम्पूर्ण इच्छाओं को भोगता है।'' आदि श्रुति प्रमाण हैं।

हे भगवन्! यह जीव आपकी माया से संसार में भ्रमण करता है। कृष्ण अति करुण, दाता और ईश्वर है। मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि अति दीन जीव पर माया का जाल न फैले।

द्वितीयपरिच्छेदः

''अव्यक्तं कारणं यत्तत्प्रधानमृषिसत्तमैः। प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्। अक्षयं नान्यदाधारममेयमजरं ध्रुवम्। हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सापरा मुने'' इत्यादिस्मृतिसिद्धप्रधानं निरूपयति अप्राकृत-मित्यादिना-

अप्राकृतं प्राकृतरूपकञ्च कालस्वरूपं तदचेतनंमतम्।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र।।३।।

तत्राचेतनत्वं चाज्ञातृत्वमस्वप्रकाशत्वं वा। अस्याचेतनस्य व्यापारवत्वेऽपि न ज्ञातृत्वम्। अतएव कर्तृत्वभोक्तृत्वादयोऽपि न सन्ति। तदचेतनं त्रिविधं प्राकृतमप्राकृतं कालश्चेति। प्रकृतिनामान्योन्यसमरूप गुणत्रयाश्रयभूतं द्रव्यं सत्त्वरजस्तमांसि।

''जिसका कारण अव्यक्त है, जो नित्य, सदसदात्मक है उसको महर्षिगण सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं। वह अक्षय, अन्य आधाररहित, अपरिमेय अजर, ध्रुव एवं सबका कारणभूत अपरा प्रकृति है।'' इत्यादि स्मृति से सिद्ध प्रधान नाम से प्रसिद्ध अचेतन तत्त्व का निरूपण करते हैं।

अर्थात् प्राकृत, अप्राकृत, काल इस प्रकार त्रिविध रूपों वाला अचेतन तत्त्व है। इस अचेतन को माया प्रधान आदि पदों से जाना जाता है। इसके शुक्ल आदि भेद भी बताए गए हैं।।३।। इसमें अचेतन तत्त्व होने से व्यापार तो है किन्तु ज्ञातृत्व नहीं है इसलिए कर्तृत्व और भोक्तृत्व भी अचेतन में नहीं है। प्राकृत, अप्राकृत और काल के स्वरूप से अचेतन को तीन प्रकार का बतलाया गया है। परस्पर समान रूप से तीन गुणों का आश्रयभूत द्रव्य प्रकृति है।

एतद्गुणत्रयाश्रयभूतमेव द्रव्यं त्रिगुणं प्रधानमिति चोच्यते। एतच्च त्रिगुणं स्वस्वकर्मवशीभूतानां जीवानां भगवत्स्वरूपतिरोधानं करोति। जीवेशावभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवतीतिश्रुतेः।'' तत्र सत्वंनाम ज्ञानादिकारणगुणविशेषः। इदमेवातिशयितं सत् मुक्ति-कारणं च भवति। रागदुःखादि कारणं विशेषो रजः। प्रमादालस्यादि कारणं गुणविशेषस्तमः। भगवदिच्छया कालविशेषे त्रयाणामपि गुणानां साम्यावस्था प्रलयः। यथैकदेहावस्थितवातादीनां साम्यम्। एषां विषमावस्था सृष्टिः। वैषम्यं चानेकधा-अव्यक्तः क्षरस्तमोरूपविभागः प्रकृतावेवेति केचित् नामान्तराणीत्यन्ये।

सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं। और इन्हीं तीनों गुणों के आश्रय भूत द्रव्य को ही त्रिगुणात्मक प्रधान कहते हैं। यही तीन गुण अपने-अपने कर्म के वशीभूत जीवों के हृदय से भगद्स्वरूप को छिपा लेते हैं। श्रुति कहती है-''अविद्या के आभास से जीव की प्रतीति कराने वाली और विद्या के आभास से ईश्वर की प्रतीति कराने वाली माया और अविद्या स्वयं प्रकृति है।''

जो सत्त्व गुण है वह ज्ञान आदि का कारण गुण विशेष है जिससे सत्त्व गुण की वृद्धि होने से मुक्ति का कारण होता है। रागदुःखादि का कारण विशेष जो गुण है उसे रजोगुण कहते हैं। प्रमाद आलस्य आदि का कारण तमोगुण है। भगवान् की इच्छा से विशेष काल में तीनों की साम्य अवस्था जो होती है उसको प्रलय कहते हैं। जैसे एक शरीर में वातादि की समान स्थिति रहती है। इनकी विषम अवस्था से ही सृष्टि होती है जो अनेक प्रकार की है। कोई प्रकृति में अव्यक्त क्षर और तम रूप में विभाग करते हैं और कोई दूसरे नाम बताते हैं।

इदमेव द्रव्यं विषमपरिणामावस्थायां व्यक्तमित्युच्यते। तच्च व्यक्तं त्रयोविंशतिविधं लस्यते। तथाहि तत्र प्रथमं प्रकृतिर्भगवदिच्छया महत्तत्त्वं व्यञ्जयति। अयं च महान्जीवस्य मनस्यध्यवसायं जनयति। पुनरयं महान् स्वस्मिन्नहंकारं व्यञ्जयति। अयमहंकारो जीवस्य मनसि शरीरगोचरामहं-बुद्धिं जनयति। अहंकारश्चाहंकर्त्तव्यंचेतिश्रुतेः। अयं चाहंकारशब्दो दम्भाहंकार इत्यादि देहेऽहं बुद्धौ गर्वे च प्रयोगेण नानार्थकः। अयमेवाहंकार उत्कृष्टजनावमानहेतुः। शास्त्रे हेयतयोच्यते। आत्मवाच्यहंशब्दस्त्वस्मच्छब्द-सिद्ध इत्युक्तमधस्तात्। अहंकारस्त्रिविधः वैकारिकतेजसतामसभेदात्।

यही द्रव्य विषम परिणाम की अवस्था में व्यक्त कहा जाता है वह व्यक्त २३ प्रकार का देखा जाता है। वहाँ पहले प्रकृति भगवान् की इच्छा से महत् तत्त्व को प्रकट करती है। यह महान् तत्त्व जीव के मन में निश्चय उत्पन्न करता है। फिर यही जीव स्वयं में अहंकार को प्रकट करते हैं। यह अहंकार जीव के मन में शरीर को देखने वाली बुद्धि को उत्पन्न करता है। श्रुतियों में--''अहंकारश्चाहंकर्त्तव्यम्'' इस प्रकार अहं करने वाले को अहंकार कहा गया है। यह अहंकार शब्द दम्भ अहंकार इत्यादि देह में अहं बुद्धि गर्व आदि के प्रयोग से विभिन्न अर्थ में प्रयोग होता है। यही अहंकार सम्मान योग्य विशिष्ट जनों का अपमान में हेतु है। इसलिये इस अहंकार को शास्त्रों में त्याज्य बतलाया है। आत्मा वाची अहं शब्द तो अस्मद् शब्द से सिद्ध होने के कारण पूर्व में वर्णित किया गया है। अहंकार तीन प्रकार का है। १-वैकारिक २- तैजस ३-तामस।

तत्र वैकारिकः सात्विकाहंकारः। तैजसा राजसाहंकारः। तामसाहंकारो भूतादिः। सात्विकाहंकारेऽभिव्यक्ता देवता दश। एकादशं-मनः। राजसादिन्द्रियाणि। अत एव मनः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धपञ्चविषय संगदशायां बंधकारणमुक्तम्। विषयान्प्रमुच्य सपरिकरभगवद्विषये प्राविण्ये सति विमुक्तिकारणं च भवति। अत्रायंविवेकः-इन्द्रियं द्विविधं बाह्यमान्तरंचेति तत्रबाह्यं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा घ्राणाख्यानीतिज्ञानेन्द्रिय-पञ्चकम्। वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यानीतिकर्मेन्द्रियपञ्चकं च। तत्र श्रोत्रादीनि पञ्च शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानुगृह्णन्ति। दिग्वातार्कवरुणाश्विनो-ऽधिष्ठातृदेवाः क्रमेणश्रोत्रादीनाम्। वागादीनां तु क्रमेण वह्नीन्द्रोपेन्द्रयम-प्रजापतयोऽधिष्ठातृदेवताः। एतानि वागादीनि वचनादानविहरणोत्सर्गा-नन्दादीनि कुर्वन्ति। आन्तरेन्द्रियं चतुर्व्विधम्मनोबुद्धिचित्ताहंकारभेदात्। तत्रसंकल्पविकल्पवृत्तिकं मनोऽध्यात्मम्। अनिरुद्धो दैवतम्। संकल्प-विकल्पाधिभूतं द्रव्यस्फुर्णविज्ञानं बुद्धिरध्यात्मं प्रद्युम्नोऽधिदैवतम्। संशयविपर्ययनिश्चयस्मृतयोऽधिभूतम्। स्वच्छत्वाविकारित्वशान्तत्व-वृत्तिकत्वंचेतस्त्वं चित्तमध्यात्मं वासुदेवाधिदैवतं चिन्तनमधिभूतम्। अहंकारोऽध्यात्मं संकर्षणोऽधिदैवतम्। अहंताममताधिभूतम् एवं बाह्येन्द्रियेष्वपि बोध्यम्।

वैकारिक अहंकार सात्त्विक अहंकार को कहते हैं। इसी प्रकार तैजस को राजसाहंकार और तामस अहंकार को भूतादिक कहते हैं। सात्त्विक अहंकार से दश देवता व्यक्त हुए एकादश देवता को मन कहते हैं। राजस अहंकार से इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई इसीलिए मन शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँच विषयों के संसर्ग अवस्था में बन्धन का कारण होता है। और यही मन उक्त विषयों से इन्द्रियों को छुड़ाकर इन्द्रियों सहित (सपरिकर) भगवान् को विषय बनाकर उनका दर्शन पूजन-कीर्तनादि कार्यों से मुक्ति का कारण बनता है। इसलिए मन की प्रवृत्ति को जानकर भगवद् सेवा में इसको लगाना चाहिये। बाह्य आन्तरिक भेद से इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण ये ज्ञानेन्द्रिय और वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रिय बाह्येन्द्रिय है। श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय क्रमशः शब्द,

स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को ग्रहण करते हैं। श्रोत्र के दिक् (दिशा) त्वक् के वात, चक्षु के अर्क (सूर्य) जिह्वा के वरुण और घ्राण के अश्विनीकुमार अधिष्ठातृ देवता हैं। इसी प्रकार वाक् के वह्नि (अग्नि), पाणि के इन्द्र, पाद के उपेन्द्र, पायु के यम और उपस्थ के प्रजापति अधिष्ठातृ देवता है। इन पंच कर्मेन्द्रियों द्वारा वाणी का कार्य बोलना है, हाथ के कर्म वस्तु ग्रहण करना, पाद का गमन (विहरण) पायु का मल त्यागना और उपस्थ का कार्य विषयानन्द ग्रहण करना है।

अब आभ्यन्तरीन्द्रियों का वर्णन करते हैं। ये १-मन २-बुद्धि ३-चित्त ४-अहंकार के भेद से चार प्रकार के हैं। इनमें संकल्प विकल्प वृत्ति वाला मन अध्यात्म है जिसके अधिदेव अनिरुद्ध हैं और संकल्प विकल्प इसके अधिभूत है। द्रव्य की स्फुरणता का विज्ञान बुद्धि अध्यात्म है जिसके अधिदेव प्रद्युम्न हैं और संशय, विपर्यय, निश्चय और स्मृति इसके अधिभूत हैं। स्वच्छता, अविकारिता, शान्त वृत्ति वाली चेतना चित्त अध्यात्म है इसके अधिदेव वासुदेव हैं। और चिन्तन चित्त का अधिभूत है। अहंकार अध्यात्म के संकर्षण अधिदेव हैं। अहंता ममता इसके अधिभूत है। इसी प्रकार बाह्येन्द्रियों में भी जानना चाहिये।

तत्त्वोत्पत्तिक्रमस्त्वेवं तामसाहंकाराच्छब्दतन्मात्रं, शब्द तन्मात्रादाकाशः, आकाशात्स्पर्शतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः वायोरूप-तन्मात्रं, रूपतन्मात्रात्तेजः, तेजसो रसतन्मात्रं, रसतन्मात्रात् आपः, अद्भ्यो गंधतन्मात्रं, गंधतन्मात्रात्पृथ्वीति। केचित्तु तामसाहंकारात्क्रमेण शब्दादितन्मात्राण्यन्तरीकृत्य पंचभूतान्युत्पद्यन्त इत्याहुः। अन्ये तु भूता-द्भूतोत्पत्तिमाहुः। सिद्धान्ते तु सात्विकाहंकारान्मनोवैकारिकादेवाश्च, राज-सादिन्द्रियाणि, तामसाद्भूतानितन्मात्राश्चेति सृष्टिक्रम इत्युक्तमधस्तात्। एवमपरेऽपि स्वस्वसम्प्रदायानुरोधेनोत्पत्तिक्रममाहुः। अकाशादिपञ्चभूतेषु शब्दादिपञ्चगुणानामुत्तरोत्तरमेकैकगुणाधिक्यं बोध्यम्।

तत्त्व की उत्पत्ति का क्रम बताते हैं। तामस अहंकार से शब्द तन्मात्रा की उत्पत्ति है। शब्द तन्मात्रा से आकाश महाभूत उत्पन्न हुआ और आकाश से स्पर्श तन्मात्रा की उत्पत्ति हुई। स्पर्श तन्मात्रा से वायु महाभूत

उत्पन्न हुआ, वायु से रूप तन्मात्रा की उत्पत्ति हुई। रूप तन्मात्रा से तेज महाभूत उत्पन्न हुआ, तेज महाभूत से रस तन्मात्रा, रस से जल महाभूत, जल से गन्ध तन्मात्रा, गन्ध से पृथ्वी महाभूत की उत्पत्ति हुई।

कोई तामस अहंकार से उत्पन्न जो शब्दादि तन्मात्रा हैं उनको भीतर करके पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति बताते हैं। जैसे तामस अहंकार से आकाश की और आकाश से शब्दादि तन्मात्रा की उत्पत्ति मानते हैं। कोई भूतों से भूतों की उत्पत्ति बताते हैं। सिद्धान्त पक्ष में तो सात्विक अहंकार से मन आदि अन्तःकरण और उनके देवता प्रकट हुए, राजस अहंकार से इन्द्रियाँ और उनके देवता और तामस अहंकार से तन्मात्रा और भूतों की उत्पत्ति बतायी गयी है जिसका विस्तार पहले किया गया है। इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने भी अपने-अपने सम्प्रदाय के मतानुसार उत्पत्ति क्रम का वर्णन किया है। आकाशादि पञ्चभूतों में शब्दादि पञ्च गुण उत्तरोत्तर क्रम में एक-एक गुण अधिक होते हैं।

तत्राकाशस्य शब्दो गुणः वायोः शब्दस्पर्शौ तेजसः शब्दस्पर्श-रूपाणि, अपां शब्दस्पर्शरूपरसाः पृथिव्याः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा पञ्चा-पीति विवेकः। एतेनाकाशस्यैव शब्दो विशेषगुण इत्यपास्तम्। महत्तत्व-मारभ्य पृथ्वी पर्य्यन्तं समष्टिरित्युच्यते। यथा सेनावनराश्यादिव्यवहारः। तेषु एकदेशमादाय क्रियमाणं कार्यं व्यष्टिरित्युच्यते। यथा वृक्षधान्यादिव्यव-हारः। पञ्चीकरण-प्रक्रिया पुराणादिषु प्रसिद्धा। पञ्चीकरणं तु भगवान् हरिरीश्वरः पृथिव्यादिपञ्चापि भूतानि सृष्ट्वा एकैकं भूतं द्विधा विभज्य द्वयोः भागयोः स्वभागमेकं निधाय द्वितीयं भागं पुनश्चतुर्धा करोति। तांश्चतुरो भागान् भूतान्तरेषु चतुर्षु संयोजयति।

जैसे-आकाश का गुण शब्द, वायु के शब्द और स्पर्श, तेज के शब्द, स्पर्श और रूप, जल के शब्द, स्पर्श, रूप और रस, पृथ्वी के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ऐसे बताया गया है। इसलिए आकाश का ही शब्द विशेष गुण है ऐसा कहने वालों का मत खण्डन किया गया। महत् तत्त्व से आरम्भ करके पृथ्वी पर्यन्त को समष्टि कहते हैं। जैसे हाथी, घोड़े अस्त्र, शस्त्र, रथ, योद्धा आदि के समूह को सेना कहते हैं और वृक्षलता पशु-पक्षी

आदि को वन कहते हैं। उनमें किसी एक को लेकर के कार्य किया जाए तो उसको व्यष्टि कहते हैं। जैसे वृक्ष, धान्य आदि का व्यवहार देखा जाता है। अब पञ्चीकरण प्रक्रिया बताते हैं। पञ्चीकरण प्रक्रिया पुराणों में प्रसिद्ध है। भगवान् स्वयं हरि ने पाँच भूतों की रचना करके प्रत्येक भूतों को दो भागों में विभक्त किया। उन दो भागों में से एक-एक भाग के चार-चार भाग किये। प्रत्येक भूतों के चार भागों को अन्य चार भूतों में मिला दिया।

एवं चिकीर्षितेषु पञ्चस्वपि भूतेषु एकैकस्य भूतस्यार्द्धं स्वभागः, द्वितीयमर्द्धं चतुर्णां भूतानां भागेषु संयोजनमिति त्रिवृत्करणश्रुतिश्चात्र मूलम्। पृथिव्यादिव्यपदेशस्तु वैशेष्यात्तद्वाद इतिन्यायात्संभवति। तत्र प्रकृतिमहदहंकारं पञ्चभूतानि शरीरस्योपादानकारणानि। इन्द्रियाणि प्रत्येकमसंगतानि प्रतिपुरुषभिन्नानि। भोगायतनं शरीरम्। किंच मनएव कर्मेन्द्रियैः सहितं सन्मनोमयकोश इत्युच्यते। प्राणादिपञ्चकर्मेन्द्रियैः सहितं सत् प्राणमयकोश इत्युच्यते। प्राणापानसमानोदानव्याना इति वायुपञ्चकम्। तत्र हृदयस्थानवर्त्ती प्राणः। अपानः पायूपस्थवर्त्ती। समानो नाभि-स्थानवर्त्ती। अयं प्राणापानाभ्यां च समो भूत्वाऽशितचतुर्विधान्ना-दिकं पचति। उदानं कंठस्थानवर्त्ती। विष्वगायामवान्सर्वशरीरवर्त्ती व्यानः। केचित्तु नागकूर्मकृकलदेवदत्तधनंजयाख्याः पञ्चान्येववायवः सन्तीत्याहुः। नाग उद्गिरणकरः कूर्म उन्मीलनकरः। कृकलः क्षुधाकरः। देवदेत्तो जृम्भणकरः धनंजयः पोषणकरः। एतेषां प्राणादिष्वन्तर्भावः। अन्न-विकारित्वाद्धेतोः शरीरमन्नमयकोश इत्युच्यते। विज्ञानमयो जीवः। आनन्दमयः परमात्मा। मायावादिनस्तु अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञान-मयानन्दमयाः पञ्चापि कोशा इति वदन्ति तच्चिन्त्यम्। ब्रह्मणो नानन्दमयत्वप्रसंगाच्च अत्रायं विशेषः। अचेतनं द्विविधम् नित्यमनित्यं तत्रानित्यं कालमहदहंकारः।

इस प्रकार पञ्चीकरण करने पर पाँचों भूतों में प्रत्येक भूत का आधा भाग तो अपना शुद्ध भाग होगा और बाकी आधा भाग अन्य चार भूतों का सम्मिश्रण होगा। इसी पञ्चीकरण प्रक्रिया को त्रिवृत्करण कहते हैं। इसके मूल में पृथ्वी आदि का व्यपदेश तो ''वैशेष्यात्तद्वादः'' इस न्याय से सम्भव है।

प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्च महाभूत शरीर के उपादान कारण हैं। इन्द्रियाँ आपस में मिली हुई नहीं हैं। भोग रूप यह शरीर प्रति पुरुष भिन्न-भिन्न है। मन ही कर्मेन्द्रियों के साथ मिलने के कारण मनोमय कोष कहा जाता है। और पञ्च प्राण कर्मेन्द्रियों के साथ होने पर प्राणमय कोष कहा जाता है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इस प्रकार शरीर में स्थित वायु के पाँच रूपों को पञ्च प्राण कहते हैं। इनमें हृदय स्थान में रहने वाला वायु प्राण कहलाता है, पायु और उपस्थ में रहने वाला वायु अपान एवं नाभि में रहने वाला वायु समान कहलाता है। यही प्राण और अपान के साथ मिलकर चतुर्विध-अन्न (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) पचाता है। कण्ठ स्थान में रहने वाला वायु उदान है। सब शरीर में व्याप्त वायु व्यान है। कोई तो नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय नाम से अन्य पाँच प्रकार के वायु को बताते हैं। इनमें नाग वायु भोजन को उगलता है, कूर्म वायु आँखों के पलक खोलता है, कृकल वायु भूख जगाता है। देवदत्त जम्हाई करवाता है और धनञ्जय पोषण करता है। इन पाँच वायु का प्राणादि में ही अन्तर्भाव है। अन्न का विकार होने के कारण शरीर को अन्नमय कोष कहा जाता है। जीव विज्ञानमय है और परमात्मा आनन्दमय है। मायावादी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँचों को कोष कहते हैं। यह चिन्तनीय है। क्योंकि मायावादी आनन्दमय कोष को ब्रह्म नहीं मानते उनके इस कथन से ब्रह्म में अनानन्दमयत्व दोष उत्पन्न होता है। यहाँ इस बात को विशेष समझना चाहिये। अचेतन दो प्रकार के हैं। १-नित्य अचेतन और २- अनित्य अचेतन। काल, महत् और अहंकार अनित्य अचेतन हैं।

गुणपञ्चीकृतभूततन्मात्रेन्द्रियप्राणरूपम्। एतद्विकारभूतमनित्यम्। तत्र कालस्य विकाराः। परमाणुमारभ्य परार्द्धपर्यन्ता अतीतानागतवर्तमान युगपच्चिरक्षिप्रादिव्यवहारहेतु कालः। तत्र सूर्यो यावत् परमाणुदेशमतिक्रा-मति तावत्कालः परमाणुः, द्वौ परमाणू द्व्यणुकः, त्रयो द्व्यणुकास्त्रसरेणुः, त्रसरेणुत्रिकं त्रुटिः, त्रुटिशतं वेधः, त्रिभिर्वेधैर्लवः, त्रिलवो निमेषः, त्रिनिमेषः क्षणः, पंचक्षणः काष्ठा, पञ्चदशकाष्ठालघुः, पंचदश लघूनि नाडिका, द्विनाडिके मुहूर्तः, नाडिका षट् सप्त वा प्रहरः, चत्वारप्रहरो

यामश्चत्वारो यामाः अहोरात्रौ पञ्चदशाहानि पक्षः शुक्लः कृष्णश्च। तौ द्वौ मासः, द्वौ मासावृतुः, षण्मासा अयनम्, अयने द्वे संवत्सरः, एवमेवाग्रेऽप्यूह्यम्। तथा च कालस्वरूपं श्रीभागवते "कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा। परिणामिनामवस्थास्ताजन्मप्रलयहेतवे। अनाद्यन्तवतानेन कालेनेश्वरमूर्त्तिना। अवस्था नैव दृश्यते वियति ज्योतिषामिवेति।" मूर्त्तिः प्रतिमा ईश्वरस्य मूर्त्तिः ईश्वरमूर्त्तेः तेन ईश्वरप्रतिमास्थानीयेनेत्यर्थः। अतएव प्रकृतिपुरुषाभ्यां कालस्य विभागोऽप्युपपन्नतरः।

त्रिगुण सत्व, रज, तम, पञ्चीकृत भूत, तन्मात्रा, इन्द्रियाँ, प्राण, रूपादि ये सभी विकारभूत होने से अनित्य हैं। अब काल के विकार बताते हैं-परमाणु से आरम्भ करके परार्द्धपर्यन्त भूत, भविष्य, वर्तमान एक साथ एक ही बार में (युगपत् चिर क्षिप्र) आदि व्यवहारों का हेतु काल है। सूर्य का प्रकाश परमाणु को जितने समय में पार करता है उस समय के अन्तराल को परमाणु कहते हैं। दो परमाणु एक द्वयणुक, तीन द्वयणुक मिलकर एक त्रसरेणु, तीन त्रसरेणु एक त्रुटि, सौ त्रुटियों का एक वेध, तीन वेध एक लव, तीन लव का एक निमेष, तीन निमेष का एक क्षण होता है। पाँच क्षणों की एक काष्ठा, पन्द्रह काष्ठा एक लघु, पन्द्रह लघु एक नाडिका, दो नाडि का एक मुहूर्त, सात नाडिका एक प्रहर चार-चार प्रहरों का एक याम, चार याम का एक दिन और रात, पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष, शुक्ल पक्ष और कृष्ण दो पक्षों का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतु अथवा ६ मास का एक अयन, दो अयन का एक संवत्सर, इस प्रकार एक संवत्सर देवताओं का एक दिनरात होता है। देवताओं के दिन-रात की गणना का वर्ष एक दिव्य वर्ष, बारह हजार दिव्य वर्षों का एक चतुर्युग (४८०० दिव्य वर्ष सतयुग के ३६०० दिव्य वर्ष त्रेता के २४०० द्वापर के और १२०० दिव्य वर्ष कलियुग।) ७१ चतुर्युग का एक मन्वतर एक हजार चतुर्युग के बराबर ब्राह्मा का एक दिन और इतने ही समय की रात्री होती है। इस प्रकार १०० वर्ष ब्रह्मा की परम आयु है। ब्रह्मा के ५० वर्ष को परार्द्ध कहते हैं इस प्रकार श्रीमद्भागवत में काल का स्वरूप बताया गया है। काल जगत् का हरण करने वाला और नित्य परिणाम वाला है। काल के स्वरूप को जन्म और प्रलय

का कारण माना गया है। इससे अनादि अनन्त काल जो ईश्वर की ही मूर्ति है उसकी अवस्था मापी नहीं जा सकती जैसे-आकाश में ज्योतियों (नक्षत्रों) (विधति ज्योतिषामिव" इति) की अवस्था ज्ञात नहीं होती। मूर्ति प्रतिमा को कहते हैं। ईश्वर की मूर्ति ऐसा कहने का तात्पर्य ईश्वर को प्रतिमा स्थानीय ऐसा समझना चाहिये। इसलिए प्रकृति और पुरुष इन दोनों से काल का ठीक-ठीक विभाग होता है।

एतत्प्रकारपरिशोधने श्रीमद्भागवते "आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ। तस्यर्त्तेयत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तये"त्याद्युक्तप्रकारेण भगवद्भजनप्रवृत्तिरुपपद्यते। किञ्चैवं सम्पदैश्वर्यादीनामनित्यत्वनिश्चये कालनिरूपणमुपयुज्यते। महदादीनां विकार उपचयांशः। स चानित्यः। ब्रह्माण्डं च महदादीनां विकारः। कार्य्यं तच्च चतुर्दशभुवनात्मकं तानि भूर्भुवः स्वर्महर्जनः तपसत्यमिति। एतन्नामकान्युपर्युपरि वर्त्तमानानि। सप्त अधोऽधो वर्त्तमानानिअतलवितलसुतलरसातलतलातलमहातलपातालाख्यानि च सप्त। ब्रह्माण्डं तदन्तर्वर्त्तिजरायुजाण्डजादिचतुर्विधशरीरसमष्टिव्यष्टिरूपमन्नपानादिकं च सर्वमनित्यमेव। किञ्च वेदा एकपञ्चाशद्वर्णाश्च नित्या एव। नित्या वेदाः समस्ताश्चेत्यादि प्रणामात्।

काल के इस प्रकार को परिशोधन करके श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि "आयुर्हरति वै पुंसां" अर्थात् यह सूर्य उदय-अस्त होकर पुरुष की आयु को हर लेते हैं। जो एक क्षण भी भगवद् वार्ता के अतिरिक्त व्यय नहीं करता। इत्यादि कथन से जीव की भगवद् भजन में प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सम्पत्ति, ऐश्वर्य आदि की अनित्यता निश्चय के लिए काल निरूपण उपयोगी है। महद् आदि का विकार अनित्य होने से ब्रह्माण्ड और इसके कार्य रूप चतुर्दश भुवन मण्डल भी अनित्य है। उनमें भू र्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य ये सात भुवन क्रमशः ऊपर की ओर और अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल ये सात भुवन क्रमशः पृथ्वी के नीचे अवस्थित है। इन चौदह भुवनों को ही "ब्रह्माण्ड" कहते हैं। इन भुवनों में जरायुज, अण्डजादि चार प्रकार के शरीर व्यष्टि समष्टि रूप अन्नपानादि सभी अनित्य हैं। वेद और ५१ वर्ण नित्य हैं। वेद

नित्य है यह श्रुतिवचन प्रमाण है।

नित्यत्वञ्चात्र कूटस्थतयाद्यन्तशून्यत्वं तच्च वेदादीनामस्त्येव। पुराणादयो येनांशेन नित्यास्तमंशं नित्यवर्गे निधाय येनांशेनानित्यास्तमनित्यवर्गे निधाय नित्यादिविभागः समुन्नेय इति सर्वमनवद्यम्। अत्र च कार्य्यकारणयोस्तन्तुपटात्मकं परस्परं भिन्नद्रव्यद्वयमिति वदन्त्यतो भेद एवेति केचिद्वदन्ति। अन्ये तु परमाणव एव तथातथा सन्निविष्टाः पटादिबुद्धिविषयाः न तु पटो नामास्तीति ब्रुवते। अपरे तु कारणात् कार्य्यं नातिरिच्यते किंत्वेकस्मिन्नेव द्रव्ये कार्यकारणावस्थे भवत इत्याहुः। कार्यकारणभूतयोस्तन्तुपटयोर्भेद इति उक्तम्। गुणगुणिनोरपि भेदाभेदौ ज्ञातव्यौ। यदि गुणः सत्यपि द्रव्ये स्वयं नश्यति यथाम्रफले श्यामत्वादि, तत्र भेदाभेदौ प्रतिपत्तव्यौ। यदि च गुणः यावत्कालं द्रव्यं वर्त्तते तावत्तिष्ठति तदत्यन्ताभेद एव।

नित्य उसको कहते हैं जो कूटस्थ हो आदि अन्त शून्य हो, वेदों की आद्यन्त शून्यता होने से नित्य है। पुराणादि भी जितने अंश नित्य हैं उनको नित्य वर्ग में और जितने अंश अनित्य हैं उनको अनित्य वर्ग में रखकर नित्यादि विभाग करना चाहिये। इस प्रकार का सिद्धान्त निर्दोष है। यहाँ कार्य और कारण को तन्तु और पट में परस्पर दो भिन्न द्रव्य जैसा मानते (कहते) हैं। इसलिए इन दोनों में भेद है ऐसा कोई कहते हैं। दूसरे अन्य लोग परमाणु ही वहाँ-वहाँ प्रविष्ट होकर पटादि रूप से बुद्धि में प्रतीत होता है वास्तव में पट नहीं होता ऐसा कहते हैं। अन्य विद्वान् कारण से कार्य भिन्न नहीं होता किन्तु एक ही द्रव्य में कार्य और कारण की अवस्था होती है ऐसा कहते हैं। सिद्धान्त पक्ष कहते हैं-कार्य कारण रूप तन्तु और पट में भेद है गुण और गुणी में भेदाभेद जानना चाहिये। यदि द्रव्य रहते हुए भी गुण नष्ट हो जाता है जैसे आम्र का कृष्ण हो जाना यहाँ गुण और गुणी में भेदाभेद जानना चाहिये। यदि जब तक द्रव्य रहे तब तक गुण भी रहे तो इसे अत्यन्त अभेद समझना चाहिये।

केचित्तु गुणगुणिनोरत्यन्तभेद इति वदन्ति, अपरे तु परमाणव एव रूपादिस्वभावाः गुणगुणिभावो नास्तीत्याहुः तच्चिन्त्यम्। एवं

क्रियाक्रियावतोर्जातिव्यक्त्योरंशांशिनोः शक्तिशक्तिमतोर्भेदाभेदौ। अत्यन्ताभेदश्च प्रतिपत्तव्यः। तत्र सत्यपि घटे चलनक्रियाया अभावात् घटचलनयोर्भेदाभेदौ भवतः। चेतनक्रियायाश्च नित्यत्वे न चेतनस्य तत् क्रियाया अत्यन्ताभेदः। ब्रह्महत्यादिना जातेर्नाशात् ब्राह्मणत्वपिण्डयोर्भेदाभेदौ संभवतः। घटत्वघटयोस्त्वत्यन्ताभेदः। यस्मिन्नंशेऽपगते अंशिनोऽवस्थानं तेनांशेन भेदाभेदौ। अन्यैरंशैरत्यन्ताभेद एव। एवं शक्तिशक्तिमतोरत्यन्ताभेदो भेदाभेदौ च ज्ञातव्यौ।

और कुछ गुण और गुणी में अत्यन्त भेद बतलाते हैं। दूसरे कहते हैं कि परमाणु ही का रूपादि स्वभाव है। न कोई गुण है न कोई गुणी है। सो चिन्तनीय है। क्रिया और क्रियावान् जाति व्यक्ति अंश अंशी शक्ति और शक्तिमान में भेदाभेद और अत्यन्त अभेद जानना चाहिये। जैसे घट तो है किन्तु चलने की क्रिया का अभाव है इसलिए घट में और चलने की क्रिया में भेदाभेद दोनों है। चेतन क्रिया का नित्यत्व है। इसलिए उसका उसकी क्रिया से अत्यन्त अभेद है। ब्रह्महत्या से जाति का नाश हो जाता है उससे ब्राह्मणत्व में व पिण्ड में भेद अभेद दोनों है। घट और घटत्च अत्यन्त अभेद है जिस अंश के जाने से अंशी बना रहे इसलिए उस अंश से भेदाभेद है अन्य अंशों के द्वारा अत्यन्त अभेद है इसी प्रकार से शक्ति व शक्तिमान में अत्यन्त अभेद व भेदाभेद जानना चाहिये।

गुणक्रियाजातिशक्तिसादृश्यादयः सर्वेऽपि द्रव्यस्य धर्माः। आत्मानात्मपरमात्मेतितत्त्वत्रयमित्युक्तम्। तत्र तत्त्वं नाम अनारोपितंप्रामाणिकमिति यावत्। तच्च द्रव्यमद्रव्यं चेति द्विविधम्। तत्र द्रव्यं च पुनर्द्विविधम्। जडमजडञ्च। तत्राजडमपि द्विविधम्-ईश्वरो जीवश्चेति। तत्राजडंवस्तु जीवश्च निरूपितः। अद्रव्यं तु सत्त्वंरजस्तमः, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः, संयोगः, क्रियाजातिशक्तिसादृश्यं चेति त्रयोदशविधम्। सर्वेषामपि पदार्थानां पदार्थत्रयान्तर्भावान्नपदार्थान्तरविरोधः। अचेतनमेव वस्तु मायाविद्यादि पदवाच्यम्। शक्तिशक्तिमतोरभेदादित्याह मायाप्रधानादि पदप्रवाच्यमिति। जीवेशावभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव-भवतीतिश्रुतेः।

गुण, क्रिया, जाति, शक्ति, सादृश्यादि सब द्रव्य के धर्म हैं। आत्मा, अनात्मा, परमात्मा ये तीन तत्त्व कहे गए हैं। तत्त्व उसे कहते हैं जिसमें किसी का कोई आरोप न हो। द्रव्य और अद्रव्य के भेद से तत्त्व दो प्रकार के हैं। द्रव्य के पुनः दो प्रकार हैं-जड और अजड। अजड के भी दो प्रकार हैं-ईश्वर और जीव। अजड वस्तु जीव का निरूपण पहले ही किया गया। अब यहाँ अद्रव्य जो है वह सत्व, रजः, तमः, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संयोग, क्रिया, जाति, शक्ति, सादृश्य के भेद से (१३) तेरह प्रकार का बतलाया गया है। सभी पदार्थों का तीन पदार्थ में ही अन्तर्भाव किया गया है इसलिए पदार्थ में अन्तर विरोध नहीं है। अचेतन वस्तु को माया अविद्यादि शब्द से उच्चरित किया जाता है। यहाँ शक्ति और शक्तिमान का अभेद है। ''जीव व ईश्वर का आभास विद्या माया और अविद्या के माध्यम से स्वयं प्रतीत होता है।'' ऐसा श्रुति कहती है।

शुक्लादिभेदा इति-''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामि''त्यादि श्रुतेः। समशब्दः सर्वपर्यायः, समेऽपि सर्वेऽपि तत्र तस्मिन्नचेतने सत्वरजस्तमोमयमचेतनमित्यर्थः। ''दैवी ह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यये''ति स्मृतेः। प्रत्यक्षादिविषयत्वात्प्राकृतमचेतनमादौ''निरूपितम्। नन्वेतदयुक्तं तथाहि-तत्रानुमानं विमतं मिथ्यादृश्यत्वाज्जड़त्वात्परिच्छिन्नत्वाच्छुक्तिरूप्यवदिति। मिथ्यात्वं च सदसत्वानधिकरणत्वम्। तच्च सत्वविशिष्टासत्वाभावो वा सत्वात्यन्ताभावासत्वात्यन्ताभावरूपं धर्मद्वयं वा सत्वात्यंताभावविशिष्टासत्त्वात्यन्ताभावरूपं विशिष्टं वेति चेन्न, सदेकस्वभावे जगति विशिष्टाभावस्येष्टत्वात्। न द्वितीयः, सत्त्वासत्वयोरेकाभावे परस्य सत्वावश्यकत्वेन व्याघातात्। अत एव न तृतीयः।

''अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णामित्यादि'' श्रुति के अनुसार अचेतन तत्त्व के शुक्ल आदि भेद जानने चाहिए। सम शब्द सर्व शब्द का पर्याय है। इस प्रकार प्राकृत, अप्राकृत एवं काल सभी अचेतन में सत्व रजतममयत्व शुक्लादि भेद है। ''दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्ययादि'' स्मृति में माया को गुणमयी बताया गया है। प्रत्यक्षादि विषय होने से प्राकृत अचेतन तत्त्व का प्रथम निरूपण किया गया। मायावादी कहते हैं कि अचेतन तत्त्व का

निरूपण युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि मिथ्यादृश्यत्व, जडत्व, परिच्छिन्नत्व एवं शुक्ति में रजत की भ्रान्ति के समान होने से अनुमान प्रमाण से जगत् की सत्ता सिद्ध नहीं होती। सदसत्व का अनधिकरणत्व होना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व तीन प्रकार से होता है-सत्वविशिष्ट असत्व का अभाव, सत्व का अत्यन्ताभाव और असत्व का अत्यन्ताभावरूप दोनों धर्म और सत्व का अत्यन्ताभावविशिष्ट असत्व का अत्यन्ताभावरूप विशिष्ट। इस पूर्वपक्षका खण्डन करते हुए सिद्धान्त पक्ष उपस्थापित करते हैं-मिथ्यात्व के तीन विकल्प में से प्रथम विकल्प असिद्ध है क्योंकि जगत् स्वभाव से ही सत् स्वरूप है इसलिए उसमें विशिष्टाभाव नहीं माना जा सकता। दूसरा विकल्प भी ठीक नहीं क्योंकि सत्त्व और असत्त्व में एक का अभाव मानने से दूसरे सत्त्व के आवश्यक रूप से विद्यमान होने के कारण व्याघात उत्पन्न होगा। इसी प्रकार तीसरा विकल्प भी असिद्ध है।

ननु सत्त्वासत्त्वयोः परस्परविरहरूपत्वानंगीकारान्न व्याघातः परस्परं विरहव्याप्यत्वादिकं च न व्याहतिकरं गोत्वाश्वत्वयोः परस्परविरहव्याप्ययोरुष्ट्रे अभावसत्त्वात्। किंतु क्वचिदुपाधौ सत्वेनाप्रतीयमानत्वमसत्वं त्रिकालाबाध्यत्वं सत्वं तयोरभावः साध्य इति चेन्न, असल्लक्षणस्यासंगब्रह्मण्यतिव्याप्तेः। तस्याप्युक्तासत्वांगीकारे लक्षणे सद्भिन्नेत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः। शब्दाभासेन तुच्छस्यापि क्वचिदुपाधौ सत्त्वेन धीसंभवाच्च उक्तसत्वाभावस्य शून्यवादिनापि जगति स्वीकाराच्च लाघवात् सत्त्वासत्त्वयोः परस्पराभावत्वस्यैवौचित्याच्च। नापि सार्वत्रिक त्रैकालिकनिषेध प्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्।

पुनः शंका उपस्थित करते हैं--सत्त्वाभाव असत्त्व स्वरूप नहीं, असत्त्वाभाव सत्त्व रूप नहीं। परस्पर विरह व्याप्यत्वरूप सत्त्वासत्त्व मानने से भी व्याहत का अवसर नहीं है। गोत्व अश्वत्व परस्पर विरह के व्याप्य हैं अर्थात् गोत्व के अभाव वाले अश्व में गोत्व नहीं होता ऐसे ही अश्वत्व के अभाव वाली गौ में अश्वत्व नहीं होता और दोनों (अश्व-गो) का अभाव उष्ट्र में होता है इसलिए सत्त्व और असत्त्व का पूर्वोक्त अर्थ नहीं बन सकता। इसका अर्थ है किसी स्थान में जो प्रतीयमान नहीं है वह असत्त्व है और

जिसका तीन काल में बाध नहीं हो वह सत्त्व है इन दोनों का अभाव साध्य करते हैं। ऐसा कहना भी अयुक्त है। असत् का लक्षण ब्रह्म में अति व्याप्त हो जाएगा। कारण यह है कि ब्रह्म भी असंग है यदि उसे भी उक्त असत्त्व मानोगे तो उस लक्षण में सद् भिन्नत्व विशेषण व्यर्थ होता है। शब्दाभास से तो गगन कुसुम भी किसी स्थान में सत्प्रतीति का विषय हो सकता है। उक्त सत्त्वाभाव तो शून्यवादी भी जगत् में मानते ही हैं संक्षेप से सत्त्वासत्त्व का परस्पर अभाव रूप मानना ही उचित है। सार्वत्रिक त्रैकालिक निषेध प्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्त्व भी नहीं कह सकते।

निषेधस्य तात्त्विकत्वे अद्वैतहानिरतात्त्विकत्वे सिद्धसाधनापत्तेः। व्यावहारिकत्वेऽपि तस्य बाध्यत्वेन तात्त्विक सत्त्वाविरोधित्वेनार्थान्तराच्च। नच ब्रह्मस्वरूपनिषेधः भ्रमकालानिश्चितस्य सापेक्षस्य निषेधस्य भ्रमकालनिश्चितनिरपेक्षनिर्विशेषब्रह्मरूपत्वासंभवात्। किंच स्वरूपेण-निषेधेऽसत्त्वापत्तेः पारमार्थिकत्वेन निषेधप्रतियोगित्वस्य निर्धर्मके ब्रह्मण्यपि सत्त्वात्। एतेन स्वात्यन्ताभावाधिकरण एव प्रतीयमानत्वं मृषात्वमिति निरस्तम्। स एवाधस्तात् स एवोपरिष्टादिति प्रतीयमानोपा-धिके असंगत्वात्केवलान्वय्यत्यन्ताभावप्रतियोगिनि ब्रह्मण्यतिव्याप्तेः।

जो निषेधतात्विक (सत्य) माना जाय तो यहाँ अद्वैत हानि है। अतात्त्विक निषेध माने तब भी सिद्ध साधन दोष है। व्यावहारिक माने तो तात्त्विक सत्य का विरोधी न होने से अर्थान्तर दोष हो जायेगा। निषेध को ब्रह्म स्वरूप मानने से कहे हुए दोष का परिहार हो सकता है किन्तु जिस काल में भ्रान्ति है उस काल में निषेध का निश्चय नहीं है। उसी भ्रम काल में निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप का तो निश्चय है फिर कैसे निषेध ब्रह्म स्वरूप हो सकता है। और भी यहाँ दोष है कि जो स्वरूप से निषेधक होंगे तो असत् के समान प्रपञ्च भी मानना होगा अर्थात् जैसे गगन पुष्प असत् है ऐसे ही प्रपञ्च को भी असत् कहना पड़ेगा। इसलिए स्वरूप से निषेध नहीं कर सकते। पारमार्थिकत्व रूप से निषेध प्रतियोगिता निर्धर्मक ब्रह्म में भी है इससे पारमार्थिक निषेध भी नहीं कर सकते। इस प्रकार प्रपञ्च के स्व अत्यन्ताभावाधिकरण रूप ब्रह्म में जो प्रतीयमान है वह मृषात्व है यह मत

निरस्त हुआ। क्योंकि वही ऊपर वही नीचे इस प्रकार कही गई प्रतीतिगोचर उपाधियों से ब्रह्म को असंगत्व बोधन किया है। जब ब्रह्म असंगत्व है तो उसका अभाव सर्वत्र है उस अभाव का प्रतियोगी ब्रह्म ही है इस अतिव्याप्ति के कारण।

नच ज्ञाननिर्वर्त्यत्वं मिथ्यात्वम्। सेतुदर्शननिर्वर्त्यब्रह्महत्यादेरिव सत्यस्य संसारस्य ब्रह्मज्ञाने न निवृत्तेर्दृष्टत्वात्। नापि सद्भिन्नत्वं मिथ्यात्वम्। सत्वं च प्रमाणसिद्धत्वं, प्रमाणत्वं च दोषासहकृतज्ञानकारणत्वम्। घटादेरपि क्लृप्तदोषहीनप्रत्यक्षादि सिद्धत्वात्, कल्प्यदोषस्य ब्रह्मबोधक-वेदेऽपि संभवात्। सर्वप्रमाणागम्ये त्वदभिप्रेते शुद्धेऽतिव्याप्तेश्चेति मिथ्या-त्वस्य मिथ्यात्वे प्रपंचः सत्यः स्याद् ब्रह्मवत् मिथ्यात्वस्य सत्यत्वे तेनै-वाद्वैतहानिः। तद्वदेव विश्वस्यापि सत्यत्वोपपत्त्या दृश्यत्वादिकमप्रयोजकं स्यात्। दृश्यत्वं च न तावद्वृत्तिव्याप्यत्वं, वेदान्तजन्यवृत्तिविषये ब्रह्मणि व्यभिचारात्। अन्यथा ब्रह्मपराणां वेदान्तानां वैयर्थ्यप्रसंगात्।

जिसकी ज्ञान से निवृत्ति होती है वह मिथ्या है यह भी मिथ्या का लक्षण नहीं हो सकता। जैसे ब्रह्महत्या की निवृत्ति सेतु दर्शन से होती है ऐसे ही सत्य संसार की निवृत्ति ज्ञान से दिखाई पड़ती है। सत् से जो भिन्न है वह सब मिथ्या है यह भी कथन असत् है क्योंकि उसमें विचार होगा कि सत्त्व (सत्) क्या है। कदाचित् कहें कि जो प्रमाणों से सिद्ध है वही सत्त्व है। प्रमाण उसे कहते हैं जो दोष निरपेक्ष ज्ञान का कारण होता है। घटादिक भी दोष हीन प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है। कल्पित दोष मानें तो ब्रह्म बोधक वेद में दोषापत्ति सम्भव हो जाएगी। समस्त प्रमाणों का अगोचर आपके अभिमत जो शुद्ध ब्रह्म है उसमें अतिव्याप्ति हो जाएगी। मिथ्यात्व को जो मिथ्या कहें तो प्रपञ्च सत्य होना चाहिए ब्रह्म की तरह। यदि मिथ्यात्व को सत्य कहें तो अद्वैत हानि हो जाएगी। ऐसे विश्व के भी सत्य हो जाने पर मिथ्यात्व के साधक जो दृश्यत्वादि हेतु है क्या वे कार्यरत न होंगे? दृश्यत्व उसको कहते हैं जो वृत्ति का विषय हो परन्तु इस प्रकार दृश्यत्व का निरूपण नहीं बनता। इससे ब्रह्म में व्यभिचार आता है। कैसे कि ब्रह्म भी वेदान्तजन्य वृत्ति का विषय है, मिथ्यात्व वहां नहीं है। दृश्यत्व हेतु है इसी रीति से व्यभिचार

हुआ। साध्य के अभाव वाले जो हेतु हैं उसे व्यभिचार कहते हैं। यदि वेदान्तजन्यवृत्ति का विषय ब्रह्म को न माने तो ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले वेदान्त वचन व्यर्थ हो जायेंगे।

नापि जडत्वं हेतुः। तद्धि नाज्ञानत्वम् आत्मनि व्यभिचारात्। तथाहि ज्ञानं स्वविषयं परविषयं वा? नाद्यः त्वयानंगीकारान्नान्त्यः मोक्षे पराभवात्। नतु परिच्छिन्नत्वं हेतुः। तच्च देशतः कालतो वस्तुतश्चेति त्रिविधम्। तत्र देशतः परिच्छिन्नत्वमत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं कालतः परिच्छिन्नत्वं ध्वंसप्रतियोगित्वम्। वस्तुतः परिच्छिन्नत्वमन्योन्याभाव प्रतियोगित्वमिति चेन्न, आद्यन्तयोर्ब्रह्मणि व्यभिचारात्। मध्यमस्य ध्वंस-कालादौ भागासिद्धेः। सप्रकारकधीबाधार्हत्वम् अध्यस्ताधिकदोषप्रयुक्त-भानत्वं प्रतिभासमात्रशरीरत्वं चोपाधिः देहात्मैक्याद्यध्यासस्यापि सप्रकारकभेदविषयकज्ञानेन बाधयोग्यत्वान्न तत्र साध्याव्याप्तिः। नच सप्रकारकेति अध्यस्ताधिकेति च विशेषणं व्यर्थं तद्विनैवोपाधेः साध्यव्यापकत्वात्। तावन्मात्रस्य तु साधनव्यापकत्वान्नोपाधिकत्वमिति वाच्यम्। विशिष्टाभावस्यातिरिक्तत्वेन वैयर्थ्याभावादिति सपरिकर-मिथ्यात्व पञ्चलक्षणीनिरासः।

जड़त्व भी हेतु नहीं हो सकता। यदि जड़त्व को अज्ञान स्वरूप कहा जाए तो आत्मा में व्यभिचार दोष है। वो कैसे-ज्ञान को स्वविषयक माने या पर विषयक? स्वविषयक तो आपको अङ्गीकार नहीं, पर विषयक यदि कहते हैं तो मोक्ष में पर ही उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार परिच्छिन्नत्व भी हेतु नहीं हो सकता। परिच्छिन्नत्व देश काल और वस्तु के माध्यम से होता है। देश से परिच्छिन्नत्व वह होता है जो कि अत्यन्त अभाव का प्रतियोगी हो, काल से परिच्छिन्नत्व वह होता है जो कि ध्वंस का प्रतियोगी हो और वस्तु से परिच्छिन्नत्व वह है जो कि अन्योन्य भाव का प्रतियोगी हो परन्तु ये तीनों ही प्रकार ठीक नहीं है। देश और वस्तु से परिच्छिन्नत्व ब्रह्म में व्यभिचारी है जैसे कि ब्रह्म में मिथ्यात्व रूप जो साध्य से तो होता ही नहीं उसे काल से परिच्छिन्नत्व भी नहीं कह सकते। ध्वंस कालादि में भागासिद्ध होता है क्योंकि पक्ष का एकदेश जो ध्वंसादि हैं उसमें काल से

परिच्छिन्नत्व नहीं रह सकता। आगे उपाधि पर विचार किया गया है वह सप्रकारक बुद्धि से बाध्य होना, अध्यस्त से अधिक दोष प्रयुक्त मानत्व होना और प्रतिभास मात्र शरीरत्व ये तीन उपाधि हैं। देह और आत्मा का ऐक्याध्यास सप्रकारक भेद विषयक ज्ञान के द्वारा बाध के योग्य होने से उपाधि साध्य व्यापक हो जाती है क्योंकि उपाधि वह है जो कि साध्य व्यापक और साधन अव्याप्य होता है। यद्यपि सप्रकारक और अध्यस्ताधिक इन दोनों विशेषणों के बिना भी उपाधि साध्य व्यापक हो जाती है किन्तु साधन अव्यापक नहीं होता अपितु साधन भी व्यापक ही होता है। इससे उक्त दोनों विशेषण व्यर्थ हैं। और उपाधि भी संगत नहीं हो सकती। विशिष्टाभाव को अतिरिक्त मानने से दोनों विशेषण व्यर्थ नहीं हो सकते। इससे उपाधि भी चरितार्थ हो जाती है इस प्रकार परिकर सहित मिथ्यात्व पञ्चलक्षणी निरस्त हो गया।

अथाप्राकृतं निरूप्यते-अप्राकृतं विकारशून्यं वस्तु इयांस्तु विशेषः। भक्तजनै हरयेऽर्पितस्य प्राकृतस्यापि भोजनसामग्र्यादेरप्राकृतत्वं जायते इति। अत एवान्योऽप्यप्राकृतः संसारो वर्त्तते इति केचित्वदन्ति। वैकुण्ठादि गत शुकशारिकादीनामप्राकृत लौकिकशरीरादिरूपमप्राकृतमेवाचेतनम्। तच्च ज्ञानजनकम्। इदमेव स्वप्रकाशरूपं शुद्धसत्त्वद्रव्यमित्युच्यते। अतएव सुगन्धपुष्पाञ्जनोद्वर्तनवस्त्रभूषणविमानगोपुरचत्वरमण्डपादिसर्वशुद्धसत्त्व-द्रव्यात्मकमेव। श्रीमद्भागवते-"प्रवर्त्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः। न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः।

अब अप्राकृत अचेतन तत्त्व का निरूपण करते हैं। अप्राकृत अर्थात् विकार शून्य वस्तु, इसमें यहाँ एक विशेषता और है कि भक्तजन हरि को जो प्राकृत वस्तु भोजन सामग्री आदि प्रेम से अर्पण करते हैं वह भी अप्राकृत हो जाती है। इसलिए दूसरा अप्राकृत संसार है ऐसा कुछ विद्वान् कहते हैं। वह भी ठीक है कि भगवत् सम्बन्ध का अचिन्त्य प्रभाव है। कुछ वैकुण्ठादि में जो तोता मैना आदि अप्राकृत लौकिक शरीरादि स्वरूप में है वे सब अप्राकृत अचेतन हैं। इसी को ज्ञान उत्पन्न करने वाला स्वयं प्रकाश शुद्ध सत्त्व द्रव्य कहा गया है। इसलिए सुगन्ध पुष्प अञ्जन उद्वर्तन वस्त्र आभूषणादि

विमान गोपुर चौराहे मण्डपादि सब शुद्ध सत्त्व द्रव्य हैं। श्रीमद्भागवत में इस प्रकार वर्णन है-जब ब्रह्माजी को भगवान् ने अपने लोक के दर्शन कराए वहाँ वैकुण्ठ में रज व तम नहीं है और न ही वहाँ इन दोनों से मिश्रित सत्त्व है और न ही वहाँ पर काल का पराक्रम है। और की तो क्या वहाँ माया तक का कोई प्रभाव नहीं।

श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशंगवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः।। सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः।। प्रवालवैदूर्य्य-मृणालवर्च्चसः परिस्फुंरत्कुण्डलमौलिमालिनः।। भ्राजिष्णुभिर्यःपरितो विराजते लसद्विमानावलिभिर्महात्मनाम्।। विद्योतमानप्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभ इति भागवते।।" प्रकृतिरिह(तु)कालः शुद्धसत्त्वं विभाग इति किल कथयित्वा ब्रह्मतत्त्वं परस्तात्।। कथयति-कमनीयं श्रीमदाचार्य्यदेवः प्रवरपरमहंसस्वामिभावाधिशाली।। इति श्रीपरमहंससर्ववैष्णवाचार्य श्रीहरिव्यासदेवविरचिते-वेदान्तरत्नाञ्जलौ द्वितीयपरिच्छेदः।।

वहाँ रजोगुण, तमोगुण और इनसे मिला हुआ सत्त्वगुण भी नहीं है। वहाँ न काल का प्रवेश है न माया ही रहती है फिर माया के परिकर वहाँ कैसे जा सकते हैं। वहाँ तो भगवान् के वे पार्षद निवास करते हैं, जिनका पूजन देवता और दैत्य दोनों करते हैं। उनका उज्वल आभा से युक्त श्याम शरीर शतदल कमल के समान कोमल नेत्र और पीले रंग के वस्त्र से शोभायमान है। अङ्ग-अङ्गसे राशि-राशि सौन्दर्य बिखरता रहता है। वे कोमलता की मूर्ति हैं। सभी के चार-चार भुजाएँ हैं। वे स्वयं तो अत्यन्त तेजस्वी हैं ही, मणिजटित सुवर्ण के प्रभामय आभूषण भी धारण किये रहते हैं। उनकी छवि मूंगे, वैदूर्यमणि और कमल के उज्वल तन्तु के समान है। उनके कानों में कुण्डल, मस्तक पर मुकुट और कण्ठ में मालाएँ शोभायमान हैं। जिस प्रकार आकाश बिजली सहित बादलों से शोभायमान होता है वैसे ही वह लोक मनोहर कामिनियों की कान्ति से युक्त महात्माओं के दिव्य तेजोमय विमानों से स्थान-स्थान पर सुशोभित होता रहता है। (श्रीमद्भा. २/९/१०-१२) परमहंसप्रवर स्वामिभाव को हृदय में धारण करने वाले

श्रीआचार्य ने प्राकृत, काल एवं शुद्ध सत्त्व ये तीन विभाग करके आगे परब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादित किया है तथा ब्रह्म को कमनीय कहा है।

तृतीयपरिच्छेदः

सुरचितशुभवेशौ भूषितौ भूषिताभिरधिकृतपरहासौ नन्दयन्तौ जनान् स्वान्। श्रुतिभिरपि विमृग्यौ गोपिकानङ्गपालौ विमलकमल नेत्रौ नौमि भक्त्यैकनेत्रौ। तत्र तावदात्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्त-व्यो निदिध्यासितव्य इत्यादिना श्रवणादिकं च भक्तिसहकृतं साधनत्वे-नाभिहितं तत्र कोऽयं श्रवणादिविधिः त्रयो हि विधेः प्रकाराः। अपूर्व-विधिर्नियमविधिः परिसंख्या विधिश्चेति। तत्र कालत्रयेऽपि कथमप्य-प्राप्तिफलको विधिरपूर्वविधिः यथा व्रीहीन् प्रोक्षतीति प्रोक्षणस्य संस्कार-कर्मणो विधि र्विना मानान्तरेणाप्राप्तेः।

युगल स्वरूप श्रीराधाकृष्ण सुन्दर वस्त्रालंकारों से विभूषित, दोनों एक दूसरे से परिहास करते हुए स्वजनों को आनन्द प्रदान कर रहे हैं। इस युगल स्वरूप को श्रुतियाँ भी नहीं जान सकती। प्रिया-प्रियतम गोपिकाओं को आलिंगन कर रहे हैं। ऐसे विमल कमल के समान नेत्र वाले भक्ति के एकमात्र साध्य प्रिया-प्रियतम युगल स्वरूप को मैं वन्दन करता हूँ। श्रुतियों से सिद्ध "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो-मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" आत्मा का अर्थात् श्रीकृष्ण का दर्शन करना चाहिये, वे ही दर्शन करने योग्य हैं। उनके दर्शन के साधन उनके पवित्र लीलाओं का श्रवण करना निरन्तर उनका स्मरण करना और ध्यान करना चाहिये। इत्यादि साधनों को भक्ति के साथ भगवद् प्राप्ति में साधन के रूप में ग्रहण किया गया है। श्रवणादि विधि तीन प्रकार की है। १-अपूर्व विधि २-नियम विधि ३-परिसंख्या विधि।

तीनों कालों में जो वस्तु किसी भी प्रकार से प्राप्त नहीं होती उस फल प्राप्ति की विधि को "अपूर्व विधि" कहते हैं। जैसे धान का प्रोक्षण करता है इस वाक्य में प्रोक्षण संस्कार अपूर्व विधि है। प्रमाणों से जो अन्य

प्राप्त नहीं है उसका यह अपूर्व विधि विधान करती है।

पक्षे प्राप्तस्याप्राप्तांशपरिपूर्णो विधिर्नियमविधि र्यथा-व्रीहीन-वहन्तीति, अत्र विध्यभावेऽपि पुरोडाशादि प्रकृतिद्रव्याणां व्रीहीणां तन्दुलनिष्पत्याक्षेपादेवावहनन प्राप्तिर्भविष्यतीति। न तत्प्राप्त्यर्थो विधिः। किंचाक्षेपादेवावहनन प्राप्तौ तद्वदेव लोकावगत कारणत्वाविशेषान्नखदल-नादिरपि पक्षे प्राप्नुयादिति अवहननाप्राप्तांशसंभवात्तदंशपरिपूर्णफलकः। द्वयोः शेषिणोरेकस्य शेषस्य वा एकस्मिन् शेषिणि द्वयोः शेषयोर्वा नित्य प्राप्तौ शेषान्तरस्य शेष्यन्तरस्य वा निवृत्तिफलकोविधिस्तृतीयः।।

एक पक्ष में प्राप्त है उसमें अप्राप्त अंश को पूर्ण करने की विधि नियम विधि है। जैसे धान को कूटना, यहाँ विधि के बिना ही पुरोडास आदि के प्रकृति द्रव्य धान को कूटना प्राप्त हुआ किन्तु यह प्राप्ति में विधि नहीं है क्योंकि चांवल निकालने के आक्षेप से ही कूटना प्राप्त हुआ है। किन्तु नखों से छीलकर भी चाँवल की सिद्धि होती है। इस पक्ष की प्राप्ति से कूटने के विधि अंश को प्राप्त नहीं किया जा सकता इसलिए अतः व्रीहीन् अवहन्ति यह विधि पक्ष में प्राप्त तथा अप्राप्त अंश की परिपूर्ण फल वाली ''नियमविधि'' है अर्थात् चाँवल कूटने की विधि द्वारा ही निकाले नख से दलन न करें। दो शेषी की अथवा एक शेष और एक शेषी अथवा दोनों शेषों की नित्य प्राप्ति में अथवा शेषान्तर व शेष्यन्तर की निवृत्ति रूप फलवाली तीसरी विधि परिसंख्या है।

यथा अग्निचयने इमामगृभ्णन् रशनामृतस्येत्यश्वाभिधानीमादत्ते इत्यत्राश्वरशना ग्रहणं गर्दभरशनाग्रहणं चानुष्ठेयम्। तत्र इमामगृभ्णन्निति-मन्त्रलिंगादेव रशनाग्रहणप्रकाशनसामर्थ्यरूपात् गर्दभरसनाग्रहण इवाश्वरशनाग्रहणेऽपि नित्यं प्राप्नोतीति। न तत्प्राप्त्यर्थेऽयंविधिः किन्तु लिंगविशेषाद्गर्दभरशनाग्रहणेऽपिमंत्रः प्राप्नुयादिति तन्निवृत्यर्थः।। यथा वा ज्योतिष्टोमे शंयवन्ताप्रायणीया सन्तिष्ठते न पत्नीः संयाजयंतीत्यत्राद्य-वाक्येन शप्वन्तत्वे विहिते तदुत्तरभाव्यगोपकरणे प्राप्ते न पत्नीरितिवाक्येन पत्नी संयाजभिन्नेषु मूक्तवाक्समिष्टियजुरादिषु करणं परिसंख्यायते इदं तु पूर्वपक्षरीत्योदाहृतम्-

जैसे यज्ञ में अग्नि चयन करने के लिये ''इमामगृभ्णन्त्रसनामृतस्य'' इस मन्त्र में यज्ञ के पशु की ''रसना'' डोरी ग्रहण करने की विधि बतायी गई है। इसमें अश्व रसना तथा गर्दभ रसना दोनों के ग्रहण प्राप्त होते हैं। लिंग से ही दूसरे मन्त्र में अश्व रसना का विधान अश्व रसना प्राप्ति के लिए नहीं किन्तु घोड़े के स्थान पर गर्दभ रसना की निवृत्ति (निषेध) के लिए परिसंख्या विधि है। जैसे और ''अग्निस्टोम'' यज्ञ के विषय में ''शंय्वन्ताप्रापणीया संतिष्ठते न पत्नीः संयाजयन्ति'' इस वाक्य में प्रापणीया नाम की इष्टि शंय्वन्त पाठ करके समाप्त करना चाहिये फिर पत्नी संयाज का निषेध है। यहाँ पर शंय्वंता आदि वाक्य से शंय्वंतत्व आदि विधान किया गया। जिससे उत्तर में होने वाले जितने भी पत्नी संयाजादि अंग हैं उन सबका हीनत्व प्राप्त हुआ। फिर न पत्नी इत्यादि पीछे के दूसरे वाक्य से पत्नी संयाज का ही निषेध ठीक रहा इस कारण से ''न पत्नीः'' इस वाक्य से पत्नी संयाज्य से भिन्न सूक्त वाक्य एवं समिष्टियजुरादि में करने की व्यावृत्ति करते हैं, अर्थात् सूक्त इत्यादि करना पत्नी संयोजन न करना यह बोध होता है। यह पूर्व पक्ष की रीति से उदाहरण दिया।

अन्यथा संतिष्ठते इत्यकरणशास्त्रस्य प्रत्यक्षत्वेन प्राप्तिःपरिसंख्या-स्यात्। सा च स्वार्थत्यागपरार्थकल्पनाप्राप्तिबाधादिरूपानन्तदोषदुष्टा विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिकेसति। तत्रत्वन्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येतिगीयते। यस्य शब्दतो अर्थतो वा अयोगव्यावृत्तिफलं स नियमविधिः। नियमपरिसंख्यातिरिक्तफलकविधित्वमपूर्वविधित्वम्। एषामुदाहरण सांकर्येऽपि न क्षतिरिति नव्याः। श्रवणं नाम वेदान्तवाक्यानि भगवत्तत्त्व प्रतिपादकानीति तत्त्वदर्शिन आचार्याद्वाक्यार्थग्रहणम्। एवमाचार्योप-दिष्टार्थस्य स्वात्मन्येवमेवयुक्तमिति हेतुतः प्रतिष्ठापनं मननम्।

अन्यथा ''संतिष्ठते'' इस अकरण शास्त्र की प्राप्ति परिसंख्या हो जायेगी। स्वार्थ का परित्याग, परार्थ की कल्पना और प्राप्त अर्थ की बाधा आदि अनन्त दोषों से युक्त परिसंख्या है। जो वस्तु कभी प्राप्त नहीं है उसके लिए पक्ष में नियम विधि है उसमें तथ अन्यत्र प्राप्ति में परिसंख्या गायी जाती

है। जो शब्द अथवा अर्थ से अयोग को दूर करती है वह नियम विधि है। नियम और परिसंख्या इन दोनों से अन्यतम फल वाली ''अपूर्व विधि'' है। यद्यपि इनके उदाहरणों में नव्य शास्त्रियों के मत में संकोच है तथापि हानि नहीं है। जिनमें भगवद् तत्त्व प्रतिपादन है ऐसे वेदान्त के वाक्यों का तत्त्वदर्शी आचार्यों के वचन से अर्थ ग्रहण करना ''श्रवण'' है। आचार्य के द्वारा उपदिष्ट अर्थ को यह युक्त ही है ऐसा मानकर अपने मन के विषय में प्रवेश करना ''मनन'' है।

अस्यार्थस्यानवरतभावना निदिध्यासनम्। एतादृश श्रवणादेरप्राप्तत्वादपूर्वविधिरेवायं विचार्य्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनो भगवतो जगज्जन्मस्थितिमोक्षलयकारणत्वं लक्षणं ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ती''तिश्रुत्याभिहितं, तत्र जगज्जन्मस्थितिमोक्षलयेष्वेकैककारणत्वं लक्षणमनन्यगामित्वात्। तथा च लक्षण चतुष्टयमेवेदं परस्पर निरपेक्षमिति तत्त्वम्। श्री रामानुजस्तु सृष्टिस्थितिप्रलयकारणत्वं समुदितमेकमेव लक्षणमिति स्वभाष्ये आहतन्न व्यावर्त्याभावात्। तदनुयायिनस्तु यत्प्रतियन्तीति प्रलयः अभिसंविशन्तीति मोक्ष इति वदन्ति।

उस अर्थ का निरन्तर भावना करना ''निदिध्यासन'' है। ऐसे श्रवणादिक साधन पहले प्राप्त नहीं थे इसलिए इनको अपूर्व विधि कहते हैं। विचार करने योग्य परब्रह्म परमात्मा का लक्षण जगत् की उत्पत्ति, पालन, मोक्ष (लय) है। श्रुति प्रमाण ''यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यं प्रत्यभिसंविशन्ति'' अर्थात् जिनसे सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं, जिनसे जीते हैं, और जिनमें सभी लय हो जाते हैं। इसमें जगत् के जन्म, स्थिति, लय, मोक्ष एक-एक कारण के लक्षण अनन्यगामी है। उसी प्रकार ये चारों लक्षण परस्पर निरपेक्ष हैं। यह तत्त्व है। सृष्टि, स्थिति, प्रलय को अपने भाष्य में रामानुज कारणगत एक ही लक्षण मानते हैं किन्तु उनके अनुयायी प्रतियन्ति को प्रलय और अभिसंविशन्ति को मोक्ष कहते हैं।

तदपि न प्रलयानन्तरमोक्षाधिकारिणोऽसंभवात्। मायावादिनस्तु एकमेव लक्षणमिदमभिन्ननिमित्तोपादानतयाद्वितीयं ब्रह्मोपलक्षयन्ति।

ब्रह्मणश्चोपादानत्वमद्वितीयकूटस्थचैतन्यरूपस्य न परमाणूनामिवारम्भकत्वरूपं न वा प्रकृतेरिव परिणामत्वरूपं किंत्वविद्यया वियदादिप्रपंचरूपेण विवर्तमानत्वलक्षणम्। वस्तुतस्तु तत्समसत्ताकोऽन्यथाभावः परिणामस्तदसमसत्ताको विवर्त्त इति वा कारणम्। समलक्षणोऽन्यथाभावः परिणामस्तद्विलक्षणो विवर्त्त इति वा कारणाभिन्नं कार्यपरिणामः--

ऐसा भी नहीं है क्योंकि प्रलय के अनन्तर मोक्ष के अधिकारी होना संभव नहीं है। मायावादी तो अभिन्ननिमित्तोपादान यह एक ही लक्षण करके ब्रह्म का उपलक्षण करते हैं और अद्वितीय कूटस्थ चैतन्य रूप ब्रह्म में उपादानत्व है परमाणु की तरह आरम्भकत्व रूप नहीं है ऐसा कहते हैं। जैसे प्रकृति परिणाम को प्राप्त होती है वैसा भी नहीं है। किन्तु अविद्या के द्वारा आकाशादिक प्रपंच रूप से विवर्त्तमानत्व ब्रह्म का लक्षण है। वस्तुतः उसके समान सत्ता के अन्यथा भाव को परिणाम कहते हैं। उसके समान सत्तावाला न होना विवर्त है। अथवा समलक्षण रूप का अन्यथा भाव होना परिणाम है तथा उससे विलक्षण होना वितर्त है। अथवा कारण से अभिन्न जो कार्य है वह परिणाम है।

तदभेदं विनैव तदव्यतिरेकेण दुर्वचं कार्यमिति विवर्तपरिणामयोर्विवेक इत्याहुः। तत्र धर्मान्तरमुत्थाप्य व्यावर्त्तकत्वरूपोपलक्षणत्वस्य निर्विशेषेऽसंभवात् उक्तलक्षणस्य विवर्त्तस्य विकल्पासहत्वात्। माध्वास्तु ''उत्पत्तिस्थितिसंहारा नियतिर्ज्ञानमावृतिः। बन्धमोक्षौ च पुरुषाद्यस्मात्स-हरिरेकराडि''ति स्कान्दोक्त्या। जन्माद्यस्य यत इति सूत्रस्थादिपदेन नियत्यादयोऽपि लक्षणानि संतीति लक्षणाष्टकं स्वीकुर्वन्ति तच्चिन्त्यम्। यतो वेति श्रुतौ अनुक्तत्वात्प्रमाणान्तरेण लक्षणान्तराण्यपि वक्तुं शक्यत्वाच्च।

उसके भेद विना ही अव्यतिरेक कहना वाणी के सामर्थ्य में नहीं आता यही विवर्त है यही विवर्त्त और परिणाम में भेद है। वहाँ धर्मान्तर को उपस्थापित करके व्यावर्त्तकत्व रूप उपलक्षण निर्विशेष में संभव नहीं होने से इस लक्षण वाले विवर्त्त का विकल्प के साथ सम्बन्ध नहीं है। माध्वमत में उत्पत्ति, स्थिति, संहार और नियति ज्ञान, आवृत्ति, बन्ध और मोक्ष जिस

पुरुष से होते हैं वह हरि एकमात्र स्वामी हैं ऐसा कहा गया है। ''जन्माद्यस्य यतः'' इत्यादि सूत्रस्थ आदि पद के द्वारा नियति आदि आठ-आठ लक्षणों को हरि का स्वरूप स्वीकार किया गया है वह चिन्तनीय है। ''यतो वा इमानि..'' आदि श्रुतियों में अनुक्त होने के कारण भिन्न प्रमाणों के द्वारा अन्य लक्षण भी कहे जा सकते हैं।

अथ यथोक्तचतुर्भिरिव लक्षणैर्लिलक्षयिषितस्य ब्रह्मणो निर्दोष त्वमनन्तानवद्यकल्याणगुणगणाकरत्वमुपास्यत्वं नित्यविग्रहं चाह-स्वभावत इत्यादिना-

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहांगिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।४।।

य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः। यः सर्वज्ञः स सर्ववित्तदैक्षत सोऽयं देव तदैक्षत लोकान्नुसृजा इति, नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् तं देवतानां परमं च दैवतं पतिं पतीनां परमं परस्तात्, विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्, न तस्य कार्यं करणं च विद्यते।

अब उक्त चार लक्षणों से बताऐ गए ब्रह्म का निर्दोषत्व, अनन्तत्व, अनवद्यत्व कल्याणगुणगणाकरत्व होने से उपास्यत्व व नित्यविग्रह भी है। इसके लिए आद्याचार्य ''स्वभावतोपास्त....'' आदि श्लोक से ब्रह्म का स्वरूप बताते हैं।

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।

अर्थात् स्वभाव से ही समस्त दोषों से रहित, समस्त कल्याणादि गुणगणों के एक राशि, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न आदि व्यूह स्वरूप के अङ्गी ब्रह्म स्वरूप, कमल के समान नेत्रों वाले, सबके मन को हरण करने वाले वरेण्य श्रीकृष्ण का हम ध्यान करें।

''जो पापरहित, जरारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, भूखरहित, पिपासारहित, सत्यकाम, सत्य संकल्प है वह परमात्मा है।''

''जो सर्वज्ञ है वह सबको जानने वाला है। उस परमात्मा ने अपने संकल्प से लोकों की रचना की।''

''जो नित्यों का भी नित्य है, चेतनों का भी चेतन है और अकेले ही सबकी कामनाओं को पूर्ण करता है उन देवताओं के भी परमदेव, स्वामियों के भी स्वामी, परात्पर सम्पूर्ण भुवनों के ईश्वर, सबके उपासनीय परमात्मा को (हम) जानते हैं। न तो उनका कोई कार्य है और न करण ही।''

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ। तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्। न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल-क्रिया चेत्याद्याः श्रुतयो हेयगुणान् प्रतिषिध्य अनन्यापेक्षमहिमैश्वर्यस्य सत्यकामत्वप्रमुखान् कल्याणगुणगणान् स्वरूपस्यैव ब्रह्मणः स्वाभाविकान् वदन्ति। नच निर्गुणवाक्यविरोधः। प्राकृत हेयगुणविषयत्वात् तेषां निर्गुणम् निरंजनं निष्कलं निष्क्रियं शांतम् इत्यादीनाम्। किंच समस्त हेयगुणरहितानां च निर्गुणवाक्यानां सगुणवाक्यानां च विषयमपहतपाप्मेत्यादि अपिपास इत्यन्तेन हेय गुणान् प्रतिषिध्य--

''ज्ञानवान् और अज्ञ दो अजन्मा हैं। उनमें से एक ईश्वर है दूसरा जीव।''

''उन ईश्वरों के भी परम ईश्वर महेश्वर को....'' (जानते हैं)

न तो उनके समान कोई है और न उनसे अधिक ही, उनकी पराशक्ति विभिन्न प्रकारों की सुनी जाती है और उनके ज्ञान, बल, क्रिया सभी स्वाभाविक हैं।''

इत्यादि श्रुतियां ब्रह्म में हेय या त्याज्य गुणों को निषेध करके जिसको किसी की अपेक्षा नहीं ऐसी ऐश्वर्यमयी महिमा से युक्त, सत्यकाम, प्रमुख कल्याण गुणगणों के स्वरूप ब्रह्म का ही स्वाभाविक प्रतिपादन करती हैं। और ब्रह्म को निर्गुण बताने वाली श्रुतियों का विरोध भी नहीं करती हैं वहाँ प्राकृत हेय गुणादि नहीं होने के कारण निर्गुण कहा गया है। अर्थात् निरंजनम्, निष्क्रियं, निर्गुणं, निष्कलं आदि समस्त वाक्यों का तात्पर्य ब्रह्म का प्राकृत हेय गुणों से रहित होना है। समस्त हेय गुण रहित निर्गुण वाक्यों और सगुण वाक्यों का विषय अपहतपाप्मा इत्यादि से लेकर अपिपास तक

है। हेय गुणों को निषेध करके--

सत्यकामः सत्यसंकल्पः इति ब्रह्मणः कल्याण-गुणान्विदधतीयं श्रुतिरेव विवेकं करोतीति सगुणनिर्गुणवाक्ययोर्विरोधाभावादन्यतरस्य न मिथ्यात्वाशंकापि। भीषास्माद्वातः पवत इत्यादिना ब्रह्मगुणानारभ्यते। ये शतमित्यनुक्रमेण क्षेत्रज्ञानन्दातिशयमुक्त्वा यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वानिति श्रुतेः ब्रह्मणः कल्याणगुणा-नामत्यादरेण ब्रवीति। सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सहब्रह्मणा विपश्चितेति-ब्रह्मवेदन फलमवगमयद्वाक्यं परस्य विपश्चितो ब्रह्मणो गुणानन्त्यं वदन्ति। विपश्चितो ब्रह्मणा सह सर्वान् कामानश्नुते।

सत्यकाम सत्यसंकल्पादि कल्याण विधान करती हुई श्रुति ही ब्रह्म में विवेक उत्पन्न करती है। इसलिए सगुण निर्गुण वाक्यों में विरोध नहीं है तथा किसी एक भी श्रुति में मिथ्यात्व आदि शंका भी नहीं है। भीषास्मात् वातः पवते..'' ''इसके भय से वायु बहता है'' इत्यादि से ब्रह्म के गुणों का आरम्भ करते हैं। ''ये शतं'' इत्यादि क्रम से क्षेत्रज्ञ के आनन्दातिशय को बताकर ''यतो वाचो निवर्तन्ते'' इस श्रुति से ब्रह्म के कल्याण गुणों को अति आदर के साथ कहा गया है। ''सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सहब्रह्मणा विपश्चित।'' ''वह ब्रह्मवेत्ता महात्मा ब्रह्म के साथ अनन्त भोगों को भोगता है।'' इस ब्रह्म को जानने का फल बताने वाली श्रुति के अनुसार ब्रह्म को अनंत गुण वाला बताते हैं।

काम्यन्त इति कामाः कल्याणगुणाः ब्रह्मणा सह तद्गुणान्सर्वान-श्नुते इत्यर्थः। ननु ''यस्यामतं तस्य मतं.. विज्ञातमविजानतामि''ति ब्रह्मणो ज्ञानाविषयत्वमुक्तमिति चेन्न, ब्रह्मविदाप्नोति परं ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवतीति ज्ञानान्मोक्षोपदेशात्। ज्ञानं चोपासनात्मकं उपास्यं च ब्रह्म सगुणं तथाहि श्रुतयः ''वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

जिनकी कामना की जाए वह कल्याणकारी गुण काम हैं। ब्रह्म के साथ उन गुणों को भी साधक प्राप्त करता है। यहाँ शंका करते हैं कि ''यस्य मतं तस्य मतं....विज्ञातमभिजानतां'' आदि श्रुति में ब्रह्म को ज्ञान का विषय

नहीं माना फिर उसका ध्यान कैसे हो सकता है। ऐसा नहीं है क्योंकि ''ब्रह्मविदाप्नोति परं'' ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' आदि श्रुतियों में ज्ञान से मोक्ष का उपदेश किया है और ज्ञान उपासनात्मक होने से उपास्य ब्रह्म सगुण है। और भी श्रुतियों में ''मैं उस महान्, सूर्य के समान स्वयं ज्योति, अन्धकार से परे पुरुष को जानता हूँ। उसको जानने वाला ही मृत्यु के पार पहुँचता है। इसके अतिरिक्त मोक्ष का अन्य मार्ग नहीं है।''

सर्वे निमेषाज्जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधिस्थितस्येशानश्च तस्य महद्यशः। एवं विदुरमृतास्ते भवन्ती''त्याद्याः। एतेन निर्विशेष ब्रह्मज्ञानादेवाविद्यानिवृत्तिरित्यपास्तम्। यतो वाचो निर्वर्त्तंते अप्राप्य मनसा सहेति ब्रह्मणोऽनन्तस्यापरिमितगुणस्य वाङ्मनसयोरेतावदिति परिच्छेदायोग्यस्य च श्रवणे न ब्रह्मैतावदिति ब्रह्म परिच्छेदज्ञानवतां ब्रह्माविज्ञातममतमित्युक्तमपरिच्छिन्नत्वाद्ब्रह्मणः ननु नेह नानास्ति किंचन, मृत्योः स मृत्युमाप्नोति, य इह नानेव पश्यति, यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् तत्केन कं विजानीयादि''ति भेदनिषेधो बहुधा दृश्यते। अतः कथं पार्थक्येन ईश्वरतत्त्वनिरूपणमितिचेन्न, अत्र सर्वस्य जगतः ब्रह्मणो जातत्वात्। तदन्तर्यामित्वेन च तदात्मकत्वेनैक्यात्प्रत्यनीकनानात्वस्यैव निषेधात्। ननु यदाह्येवैतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवतीति ब्रह्मणि नानात्वं पश्यतोभयप्राप्तिश्रुतिसिद्धेति चेदुच्यते, ब्रह्मणि अन्तरमवकाशो विच्छेद एव उक्तं च महर्षिभिः-यन्महूर्त्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते।। सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा भ्रान्तिः सा च विक्रियेत्यादि।

उस विद्योतमान पुरुष से ही सब काल निमेष आदि उत्पन्न हुए हैं। वह पुरुष इस दृश्यमान जगत् का शासक है। उसका महान् यश है। इस प्रकार जो जानते हैं वो अमृत हो जाते हैं। इन श्रुतियों के द्वारा निर्विशेष ब्रह्मज्ञान से ही अविद्या की निवृत्ति होती है इस मत का खण्डन होता है। ''यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'' यहाँ ब्रह्म के अनन्त अपरिमित गुणों के कारण वाणी और मन की असमर्थता बतायी गई है न कि ब्रह्मज्ञान में बाधकता। इसी प्रकार ''अविज्ञातं विजानतां'' यहाँ पर परिच्छिन्न ज्ञानवानों

के लिए ब्रह्म अज्ञात है ऐसा कहा है न कि अपरिच्छिन्न ब्रह्म के लिए। यहां शंका है-"नेह नानास्ति किञ्चन" "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति" "य इह नानेव पश्यति यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति" "यत्रत्यस्य सर्वमात्वैवाभूत्" तत्केन कं पश्येत्" "तत्केन कं विजानीयात्।" इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म के भेद का निषेध किया है तो फिर कैसे ईश्वर तत्त्व का निरूपण अलग से किया जा सकता है? इस प्रश्न के समाधान में कहते हैं कि यह सब जगत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ। भगवान् सबके अन्तर्यामी होने से जगद् तदात्मक है अथवा ब्रह्मात्मक है। इस प्रकार अन्तर्यामित्व और तदात्मकत्व से एकता है। प्रत्यनीक नानात्व का ही निषेध है। यदि ऐसा है तो जिस समय इस ब्रह्म के विषय को उदरान्तर करते हैं तो भय होता है ऐसे ब्रह्म में नाना प्रकार देखने वाले को ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है ऐसा श्रुति से सिद्ध है, इस विषय में कहते हैं कि ब्रह्म में अन्तर नाम अवकाश व विच्छेद का है। इसी को ऋषियों ने इस प्रकार कहा है "यन्मुहूर्तंक्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते, सा हानिस्तन्महद्छिद्रं सा भ्रान्तिः सा च विक्रिया" अर्थात् जिस मुहूर्त अथवा जिस क्षण में भगवान् वासुदेव का चिन्तन नहीं होता वही हानि है वही महान् छिद्र है वही भ्रान्ति है और वही विक्रिया है।

नन्वेकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेत्यत्राद्वितीयपदं गुणतोऽपि स द्वितीय-तामसहते, अतः सर्वशाखाप्रत्ययन्यायेनैव कारणवाक्यानामद्वितीय वस्तु-प्रतिपादनपरत्वमभ्युपगमनीयं कारणतयोपलक्षितस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणो लक्षणमिदमुच्यते। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति। अतो लिलक्षयिषितं ब्रह्म निर्गुणमेवेति चेन्न, जगत्कारणस्य ब्रह्मणः स्वव्यतिरिक्ताधिष्ठानान्तर-निवारणेनाद्वितीयपदस्य तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोसृजतेत्यादि विचित्रशक्तियोगप्रतिपादनपरत्वात्।

और भी शंका करते हैं कि "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इस श्रुति में अद्वितीय पद गुण से भी द्वितीयता को नहीं सह सकते। एक शाखा से सब शाखा की पहचान हो जाती है। इस न्याय से कारण वाक्य अद्वितीय वस्तु का प्रतिपादन करता है ऐसा मान लेना चाहिये। कारण के उपलक्षित जो अद्वितीय ब्रह्म का लक्षण है-'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस प्रकार कहा जाता है।

इस कारण जिस ब्रह्म को लक्ष किया है वह ब्रह्म तो निर्गुण है ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि सम्पूर्ण जगद् के कारण ब्रह्म के अतिरिक्त इस जगत् का दूसरा अधिष्ठान नहीं है। उसके लिए श्रुति में अद्वितीय पद दिया गया है। जिसका भाव-'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोसृजत' इत्यादि श्रुतियों के अनुसार विचित्र शक्ति योग प्रतिपादन करने के लिए अद्वितीय पद दिया गया है।

सर्वशाखाप्रत्यय न्यायश्चात्र भवतो विपरीतफलः सर्व शाखासु कारणान्वियिनां सर्वज्ञत्वादीनां गुणानाम् अत्रोपसंहारहेतुत्वात्। अतः कारणवाक्यस्वभावादपि"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे"त्यनेन सगुणमेव प्रतिपाद्यते। किंच"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मे" त्यत्र सामानाधि करण्यानेक-विशेषणविशिष्टैकार्थविधानव्युत्पत्त्यापि न निर्विशेषवस्तुसिद्धिः। भिन्न-प्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामेकस्मिन्नर्थे वृत्तिः। सामानाधिकरण्यं इति शाब्दिकाः तत्र सत्यज्ञानादिपदमुख्यार्थैर्गुणैरेकस्मिन्नर्थे पदानां वृत्तौ निमित्तभेदोऽवश्यमाश्रयणीय इति।। तत्त्वमस्यादि वाक्येष्वपि सामा-नाधिकरण्येन निर्विशेषवस्त्वैक्यपरंतत्त्वंपदयोः सविशेषाभिधायित्वात् तत्पदमनन्यगोचरानन्तविशेषणविशिष्टं जगत्कारणं ब्रह्म प्रतिपादयति। त्वं पदं च संसारित्वविशिष्टजीवात्मानम्। तत्त्वं पदस्य निर्विशेषस्वरूपपरत्वे स्वार्थः परित्यक्तःस्यात्। एवं च समानाधिकरणप्रवृत्तयोस्तत्त्वमिति द्वयोरपि पदयोर्मुख्यार्थपरित्यागेन लक्षणा च समाश्रयणीया। सर्वेष्वपि वेदान्त-वाक्येषु समानाधिकरणनिर्विशेषेषु तत्तद्विशेषणविशिष्टस्यैव ब्रह्मणोऽ-भिधानात्। यथा नीलोत्पलमानयेत्युक्ते नीलत्वादिविशिष्टमेवानीयते तथेति ज्ञेयम्। किंच सर्वेषां प्रमाणानां सविशेषवस्तुविषयत्वान्निर्विशेषे प्रमाणाभावः, नच स्वानुभवसिद्धं तदिति वाच्यम्, अनुभवानामपि इदमहमदर्शमिति केनचिद्विशेषणविषयत्वात्।

आपके द्वारा प्रयुक्त "शाखाप्रत्यय" न्याय भी इस स्थान में विपरीत फल वाला है क्योंकि सब शाखा के विषय कारण में प्राप्त हुए सर्वज्ञत्वादि गुण का उपसंहार है। इस कारण कारण वाक्य "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस प्रकार सगुण का ही प्रतिपादन होता है। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" में सामानाधिकरण्य अनेक विशेषण विशिष्ट एकार्थता का विधान है। इसकी

व्युत्पत्ति करके भी निर्विशेष वस्तु सिद्ध नहीं होती। शब्द को जानने वाले भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के निमित्त वाले शब्दों को एक अर्थ में लगाते हैं उसको सामानाधिकरण्य कहते हैं। ''सत्यज्ञानादि'' पद में मुख्य अर्थ और गुणों का एक अर्थ में पदों को लगाया जाए तो उसके निमित्त अवश्य भेद का आश्रय लेना पड़ेगा। ''तत्त्वमसि'' इस वाक्य के विषय में भी सामानाधिकरण्य उस निर्विशेष वस्तु में एकता को नहीं बताता। तत्, त्वं ये दोनों पद सविशेष का अविधान करते हैं। तत् यह पद अगोचर अनन्तादि विशेषण युक्त जगत् के कारण ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। ''त्वम्'' पद संसारी जीवात्मा को बताता है। ''त्वम्'' इस पद को यदि निर्विशेष स्वरूप में लगायें तो स्वार्थ छूट जाएगा। इस प्रकार इन दोनों पदों का समान अधिकरण करेंगे तो मुख्य अर्थ को छोड़कर लक्षण का आश्रय लेना पड़ेगा। समानाधिकरण वाले निर्विशेष ब्रह्मपरक वेदान्त वाक्यों में विशेषण विशिष्ट (सविशेष) ब्रह्म का ही कथन होता है। ''जैसे नील कमल लाओ'' इस वाक्य से नीले रंग का कमल लाया जाता है। इसी प्रकार इस प्रकरण में जानना चाहिये। बात यह भी है कि सब प्रमाण सविशेष वस्तु का ही प्रतिपादन करते हैं निर्विशेष में कोई प्रमाण नहीं है। यदि कहा जाए कि निर्विशेष में प्रमाण अपने अनुभव से सिद्ध है तो अपने अनुभव को भी ''यह मैंने देखा'' ऐसा कहने के लिए कोई विशेषण वाला ही विषय होता है।

न च तत्र शब्दः प्रमाणम्। शब्दस्य पदवाक्यरूपेण प्रवृत्या निर्विशेषेऽभिधानस्य सामर्थ्याभावात्। प्रकृतिप्रत्यययोगेन हि पदत्वम्। पदसमुदायो वाक्यम्। तस्यानेकपदार्थसंसर्गविशेषाभिधायित्वेन न निर्विशेष वस्तुप्रतिपादनमासामर्थ्यात्। तथाहि नहि निर्धर्मके वस्तुनि वाक्यस्य प्रामाण्यं संभवति। वाक्यं हि पदार्थज्ञानद्वारा बोधकं पदार्थज्ञानं च गृहीतसंगतिकेभ्यः पदेभ्यो वृत्या भवति। संगतिग्रहश्च वाक्यार्थज्ञानात्पूर्वमेवप्रमाणान्तरोपस्थितवृद्धव्यवहारादिना भवति न चात्र निर्धर्मके ब्रह्मणि प्रमाणान्तरं प्रक्रियते।

निर्विशेष वस्तु में शब्द भी प्रमाण नहीं है। शब्द के पद एवं वाक्य रूप से प्रवृत्त होने के कारण निर्विशेष के अभिधान में शब्द का सामर्थ्य नहीं है। प्रकृति प्रत्यय के योग को पद कहते हैं और पद समूह को वाक्य कहते हैं। उस वाक्य का अनेक पदार्थ के संसर्ग से विशेष अभिधान होने के कारण निर्विशेष वस्तु के प्रतिपादन में सामर्थ्य नहीं है। और भी निर्धर्मक वस्तु के विषय में वाक्य प्रमाण नहीं हो सकते। वाक्य पदार्थ के ज्ञान द्वारा बोध कराते हैं और पदार्थ ज्ञान संकेतग्रह के द्वारा होता है। संकेतग्रह वाक्यार्थ ज्ञान से पहले वृद्ध व्यवहार आदि प्रमाणान्तरों से होता है परन्तु निर्धर्मक ब्रह्म के विषय में प्रमाणान्तर की प्रक्रिया नहीं है।

तथा हि न तावत्प्रत्यक्षं तत्र प्रमाणम्। तस्य निर्विकल्पसविकल्प भेदभिन्नत्वात्। तत्र निर्विकल्पकं नाम केनचिद्विशेषेणवियुक्तस्य ग्रहणं न सर्वविशेषरहितस्य। सविकल्पकं तु सविशेषविषयमेव जात्याद्य अनेक पदार्थविशिष्टविषयत्वात्। अत एकजातीय द्रव्येषु प्रथमपिण्डग्रहणं निर्विकल्पकं द्वितीयादि पिण्डग्रहणं सविकल्पकमित्युच्यते। नाप्यनुमानं तस्य प्रत्यक्षादि दृष्टसम्बन्धविशिष्टविषयत्वात्। नेन्द्रियाणि नानुमानं इति-श्रुतेश्च। भावरूपत्वेनाभावागोचरत्वात्। यूपाहवनीयादिवच्छास्त्रादेव तदुपस्थितेरिति चेन्न। वैषम्याद्यूपाहवनीयादीनां शब्दशक्यतावच्छेदक-धर्मवत्वादिह च सर्वधर्मातीतत्वेन पदवृत्त्यविषयत्वात्-

उसी प्रकार ब्रह्म में निर्विकल्प सविकल्प भेद से भिन्नत्व होने के कारण प्रत्यक्ष भी ब्रह्म का प्रमाण नहीं है। निर्विकल्प प्रत्यक्ष का भाव सम्पूर्ण विशेषण से रहित न होकर किसी एक विशेषण वियुक्त है और सविकल्पक प्रमाण तो सविशेष ही है क्योंकि इसका विषय जात्यादि अनेक पदार्थ ही होते हैं। इसलिए एक जातीय द्रव्य में प्रथम पिण्ड का ग्रहण निर्विकल्पक और द्वितीय पिण्डादि का ग्रहण सविकल्पक कहा जाता है। अनुमान भी उसमें प्रमाण नहीं है। अनुमान का सम्बन्ध प्रत्यक्षादि दृष्ट विषयों से ही होता है। ब्रह्म का ज्ञान न तो प्रत्यक्ष से और न अनुमान से होता है इस विषय में ''नेन्द्रियाणि नानुमानम्'' यह श्रुति प्रमाण है।

निर्विशेष ब्रह्म शब्द प्रमाण का विषय भी नहीं है क्योंकि शब्द प्रमाण भावरूप है तथा भावरूप वस्तु का ग्रहण करवाता है, अभावरूप निर्विशेष ब्रह्म का नहीं इस पर वादी कहे के जिस प्रकार यूप में आदित्य का

आवाहन किया जाता है किन्तु वहाँ यूप में आदित्य का अभाव है तब भी शब्द उस अभाव रूप आदि का ग्रहण करवाता है वैसे ही शब्द प्रमाण निर्विशेष का ग्रहण करवा देता है तब इसका खण्डन करते हुए कहा गया है कि दोनों में विषमता है। यूप और आवहनीय आदित्य में शब्द शक्यता अवच्छेदक है अर्थात् आदित्य धर्मी पदार्थ है जबकि निर्विशेष ब्रह्म सभी प्रकार के धर्मों से शून्य होने के कारण पदवृत्ति शब्द प्रमाण का विषय नहीं है।

तथा हि पदवृत्ति तावद्द्वेधा-मुख्या जघन्या च। तत्र मुख्या सामान्य विशिष्टव्यक्तिविषयोऽस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छारूपः संकेत इति तार्किकाः। सामान्यमात्रयोगो यथा पंकजपदस्यावयवशक्तेः कुमुदपद्मयोरविशिष्टत्वेऽपि भूरिप्रयोगवशात्पद्मेऽपि नियमोपपत्तेरित्याहुः। जघन्यापि द्विविधा लक्षणा गौणी च। तत्र शक्यसंबन्धे लक्षणा यथा गङ्गायां घोष इत्यत्र प्रवाहशक्तस्य गङ्गापदस्य तत्संबद्धे तीरे वृत्तिरेतस्याः साक्षाच्छक्यसम्बद्धवृत्तित्वेऽपि परम्परया पदवृत्तित्वमित्यविरोधः।

पद की वृत्ति दो प्रकार की है-मुख्या और जघन्या। तार्किक जन सामान्य और विशिष्ट अभिव्यक्ति विषयक इस शब्द से यह अर्थ जानना चाहिये यह ईश्वर इच्छारूप संकेत मुख्य पदवृत्ति है ऐसा कहते हैं। जैसे पंकज शब्द को अवयव शक्ति से कुमुद पद्म आदि शब्दों में भिन्न अर्थ नहीं होने पर भी बहुत प्रयोग होने के कारण पंकज पद से पद्म का ही बोध होता है। जघन्या पदवृत्ति लक्षणा और गौणी के भेद से दो प्रकार की है। शक्य सम्बन्ध में लक्षणा होती है जैसे ''गंगायां घोषः'' गंगा में झोंपडी है यहाँ प्रवाह अर्थ में समर्थ गंगा पद शक्य सम्बन्ध से तट का अर्थ ग्रहण कराता है। लक्षणा के साक्षात् शक्य सम्बद्ध वृत्ति होने पर भी ''गंगायां घोषः'' यहाँ गंगा पद से तट का ही अर्थ बोध होता है अतः पदवृत्ति होने में विरोध नहीं है।

अत्र चोद्देश्यान्वयानुपपत्तिर्बीजं यथा वा मञ्चाक्रोशन्तीत्यत्र मञ्चशक्तस्य मञ्चपदस्य मञ्चसम्बद्धेषु पुरुषेषु वृत्तिः। शक्यस्थवृतिलक्ष्यमाणगुणसम्बन्धा गौणी-यथा सिंहो माणवक इत्यत्र सिंह पदस्य सिंहवृत्ति

शौर्यादिगुणलक्षणया तद्वति माणवके वृत्तिरिति। अत एव लक्षणा गौणीतो बलवती गौण्यां वृत्तिद्वयात्मकत्वात् तदुक्तम्। अभिधेयाविनाभूत प्रतीतिर्लक्षणोच्यते।। लक्ष्यमाणगुणैर्योगाद्वृत्तेरिष्टा तु गौणतेति। व्यञ्जनाख्या परावृत्तिरित्यालंकारिकाः। ते तु गौणीं लक्षणामध्येऽन्तर्भाव्य मुख्यालक्षणाव्यंजना चेति वृत्ते त्रैविध्यमाचक्षते। व्यंजना चात्र गतोऽस्तमर्क इति।

उद्देश्य में अन्वय की उपपत्ति नहीं होना बीज है। लक्षणा में जैसे ''मञ्चाक्रोशन्ति'' मञ्च शोर कर रहे हैं। यहाँ पर मञ्च अर्थ में समर्थ मंच पद की मंच से सम्बन्धित पुरुषों में वृत्ति है। शक्यस्थ वृत्ति से लक्ष्यमाण गुण सम्बन्ध को गौणी कहते हैं। जैसे ''सिंहो माणवकः'' ''यह मनुष्य सिंह है।'' यहाँ पर सिंह पद से सिंह में रहने वाले शौर्यादि गुण इस मनुष्य में है, इसलिए लक्षणाशक्ति गौणी से बलवान् है क्योंकि इसमें (शक्य और लक्ष्य में) वृत्ति है। इसलिए कहा जाता है कि अभिधेय के साथ अविनाभूत अर्थ की प्रतीति लक्षणा बताई गई है। लक्ष्यमाण गुणों के योग से गौणी वृत्ति वाञ्छित है। आलंकारिक विद्वान् कहते हैं व्यञ्जना नाम की परावृत्ति है। उनके विचार में गौणी को लक्षणा के मध्य में अन्तर्भावना करके मुख्या लक्षणा और व्यञ्जना के नाम से तीन प्रकार की वृत्ति बताते हैं। उसमें व्यञ्जना का उदाहरण देते हैं कि-''गतोऽस्तमर्कः'' अर्थात् सूर्यास्त हुआ।

वाक्यप्रयोगानन्तरं दूरं मा गा इति पण्यान्यपसार्य्यतामिति सन्ध्योपास्यतामित्यादि बहूनां बहुविधार्थप्रत्ययो भवति। तत्र च न शक्तिर्न वा लक्षणा किंतु शब्दस्यैवान्वयव्यतिरेकाभ्यामपरा व्यञ्जनाख्या-वृत्तिराश्रयणीयेति वदन्ति। यत्तु ''यौगिको योगरूढश्च शब्दः स्यादौपचारिकः मुख्यो लाक्षणिको गौणः शब्दः षोढा निगद्यते'' इति वैयाकरणैः षड्विधत्वमुक्तम्। तन्मुख्यजघन्ययोरवान्तरभेदमादाय योजनीयम्। तथा हि मुख्यो रूढः यौगिको योगरूढ इत्येकं त्रिकं मुख्यायां, लाक्षणिकः औपचारिको गौण इत्यपरं त्रिकं जघन्यायां-

''गतोऽस्तमर्कः'' कहने से दूर मत जाओ, दुकानदार दुकान समेटे, ब्राह्मण सन्ध्योपासना करें इत्यादि बहुत प्रकार के अर्थों का बोध होता है।

वहाँ न तो शक्ति है और न लक्षणा ही है किन्तु शब्द के ही अन्वय व्यतिरेक के आधार पर व्यञ्जना नाम की शब्द की अन्य वृत्ति आश्रय करने योग्य है ऐसा कहते हैं। वैयाकरण रूढ, यौगिक, योगरूढ, लाक्षणिक, औपचारिक और गौण इस प्रकार शब्द के छ भेद मानते है। इन सबको मुख्या और जघन्या के अवान्तर भेद समझना चाहिये। उनमें मुख्य (रूढ), यौगिक और योगरूढ इन तीनों को मुख्या में अवान्तर्भेद से समाहित किया गया है और लाक्षणिक औपचारिक और गौण इन तीनों को ''जघन्या'' में अन्तर्हित किया गया है।

लक्षणापि त्रिविधा-अजहत्स्वार्था, जहदजहत्स्वार्था, जहत्स्वार्था चेति। तत्राद्या वाचा अर्थापरित्यागेनैवान्यत्र वर्तमाना शक्तितुल्या सर्व जघन्यातो बलवती यथा-काकेभ्यो दधि रक्षतामिति लोके उपघातकत्वेन काकपदस्य काकादितरेषु वृत्तिः। यथा वा अष्टीरुपदधातीत्यत्र अष्टिशब्दस्य मन्त्रोपधेयेऽष्टिकासु वृत्तिः। अष्टिमन्त्रबाहुल्येनेति। यथा वा शोणो धावतीत्यत्र शोणगमनलक्षणस्य वाक्यार्थस्य विरुद्धत्वात्तदपरित्यागेन तदाश्रयाश्वादिषु वृत्तिः। केचित्तु शोणो धावतीत्यादिनोदाहरणं तादात्म्य-सम्बन्धेन तत्रापि मुख्यत्वोपपत्तेः। अतएव चतुष्टयी शब्दानां वृत्तिरिति महाभाष्यकारैरुक्तम्।

''लक्षणा'' भी अजहत् स्वार्था, जहदजहत् स्वार्था और जहत् स्वार्था के भेद से तीन प्रकार की है। उनमें वाच्यार्थ को परित्याग किए बिना अन्यार्थ में भी तुल्य शक्ति से रहने वाली सम्पूर्ण जघन्या वृत्तियों में बलवती ''अजहत्'' स्वार्था लक्षणा है। जैसे ''काकेभ्यो दधि रक्षताम्'' (कौओं से दही की रक्षा करो) इस प्रकार लोक व्यवहार में उपघातक रूप से काक पद के अर्थ को परित्याग किए बिना काक इतर बिल्ली आदि से भी रक्षा करने का अर्थ प्रकट होता है। अथवा जैसे-''अष्टीरुपदधाति'' यहाँ पर अष्टि को धारण करता है ऐसा कहने से अष्टि शब्द का (अभिमंत्रित'' ईटों में अष्टि) मन्त्र बाहुल्य के कारण अभिमन्त्रित ईटों में अर्थ की वृत्ति होती है। अथवा जैसे ''शोणो धावति'' लाल दौडता है ऐसा कहने से लाल रंग का दौड़ना वाक्यार्थ नहीं बनता किन्तु लाल रंग को छोड़े बिना लाल रंग के घोड़े आदि

में अर्थ की वृत्ति होती है। कोई कहते हैं ''शोणो धावति'' आदि उदाहरण तादात्म्य सम्बन्ध में होते हैं वहाँ भी मुख्य की ही उपपत्ति है इसीलिए शब्दों की चतुष्टयी वृत्ति है ऐसा महाभाष्यकार बताते हैं।

चतुष्टयं च जातिगुणक्रियाद्रव्यस्वरूपम्। तत्र गौरित्यादौ जातिः। शुक्लो नील इत्यादौ गुणः। चल इत्यादौ क्रिया डित्थ इत्यादौ द्रव्य स्वरूपमेव लक्षणांगीकारे च तद्विरुध्येतेत्याहुः। जहदजहत्स्वार्था शक्यैकदेशपरित्यागेन शक्यैकदेशे वृत्तिरियमपि जहल्लक्षणातो गौणीतश्च बलवती। वाक्यैकदेशान्वयाद्यथा सोयं देवदत्त इत्यादौ। अत्र हि तत्कालविशिष्टैतत्काल विशिष्टयोर्युगपदान्वये विरोधात्तदुपलक्षित देवदत्तस्वरूपमेव शक्यैकदेशलक्षणया पदाभ्यामुपस्थाप्यते। इयमेव भागत्यागलक्षणेत्युच्यते।

जाति गुण क्रिया और द्रव्य को चतुष्टयी वृत्ति कहते हैं। वहाँ गौ इत्यादि जाति हैं, शुक्ल नील इत्यादि गुण हैं, चल इत्यादि क्रिया हैं और डित्थ इत्यादि द्रव्य स्वरूप है। उनमें लक्षणा को अङ्गीकार करने से उसका विरोध होता है ऐसा कहते हैं। एकदेश परित्याग में शक्य और एकदेश परित्याग में अशक्य जो वृत्ति है उसको ''जहदजहत् स्वार्थालक्षणा'' कहते हैं। एकदेश में अन्वित वाक्य होने के कारण यह वृत्ति ''जहल्लक्षणा'' और गौणी से भी बलवती है। जैसे-''सोऽयं देवदत्तः'' यह वही देवदत्त है ऐसा कहने से उस काल विशिष्ट देवदत्त का इस काल विशिष्ट देवदत्त में एक साथ (युगपत) अन्वय करने से जो पहले युवा देवदत्त को देखा गया वह वृद्धावस्था में अब नहीं हो सकता इस प्रकार विरोध होने के कारण उपलक्षित देवदत्त के स्वरूप का ही एकदेश में शक्य लक्षणा करके दोनों पद स्थापित होते हैं। इसी को भागत्याग लक्षणा कहा गया है।

जहत्स्वार्था तु वाच्यार्थस्य सर्वांशत्यागे नान्यत्र वृत्तिः। यथा-गंगायां घोष इत्यादौ। इयं च गौणीतो बलवती सर्वलक्षणातो दुर्बलेतरवृत्ति संभवेनाद्रियते सर्वमुख्यार्थबाधात् इति शब्दवृत्तयः निरूपिता। आसा-मेकतरापि नाद्वितीये ब्रह्मणि भवितुमर्हति। तत्रादौ रूढेरसंभव उच्यते। शक्तिग्रहस्तु क्वचित्प्रवृत्तिलिंगानुमानात् यथा घटमानयेति वाक्यश्रवण-

समयानन्तरं कश्चित्कम्बुग्रीवादिमन्तमर्थमानयति तस्यानयनक्रिया प्रत्यक्षत उपलभ्य तत्कारणत्वेन तस्य कृतिमनुमानयतः कृतेः स्वकृतिदृष्टान्तेन प्रवर्तकज्ञानजन्यत्वमनुमिनोति। तच्च ज्ञानं शब्दान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्कारणान्तरस्य चानुपस्थितेः--

जहत्स्वार्था की वृत्ति वाच्यार्थ के सर्वांश को त्यागकर अन्यत्र होती है। जैसे ''गङ्गायां घोषः'' इस वाक्य में गंगा में घर है ऐसा कहने से गौणी से बलवती अन्य में वृत्ति होने से सम्पूर्ण मुख्यार्थ बाधित होने के कारण इसको सभी प्रकार की लक्षणाओं से दुर्बल माना जाता है। इसका आदर नहीं किया जाता। इस प्रकार शब्द वृत्ति को निरूपण किया गया। इनमें से एक भी शब्द की वृत्ति अद्वितीय ब्रह्म के निरूपण में समर्थ नहीं है। उनमें पहले रूढि का असम्भव होना कहा जाता है। क्योंकि शक्तिग्रह कहीं प्रवृत्ति और कहीं अनुमान से होता है जैसे-''घटमानय'' यहाँ पर घट लाओ यह वाक्य श्रवण करके कोई कम्बुग्रीवादिमान अर्थ (घट) लाता है। उसके लाने (आनय) की क्रिया को प्रत्यक्ष देखकर उस कारण के द्वारा उसकी कृति का अनुमान होता है। उस कृति से अपनी कृति का ज्ञानजन्य अनुमान करता है। वह ज्ञान शब्द के अन्वय व्यतिरेक से होता है। घट लाने का शब्द के अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है।

तस्य शब्दस्यैव घटकर्मनयनकर्तव्यताप्रतिपादने सामर्थ्यं कल्पयति। तत्रावापोद्वापाभ्यां प्रत्येकसामर्थ्यं क्रमेण निश्चिनोति इति शक्तिग्रहक्रमः। एवं दिष्ट्या वर्द्धते, भद्रं पुत्रस्ते जात इत्यादिवाक्यश्रवणसमनन्तरं श्रोतुर्मुखविकाशादिलिंगेन हर्षमनुमायतश्च कारणान्तरानुपस्थितेः पुत्रजन्मनश्च मानान्तरेणाज्ञातत्वात् तज्जन्यतां निश्चित्य तज्ज्ञानं प्रत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामिदं ज्ञानजनकमिति कल्पयित्वा क्रमेण पूर्ववत् प्रतिपदशक्तिग्रहः। तद्वदत्र ब्रह्मज्ञानस्य प्रवृत्यादिजनकत्वाभावान्मानान्तरागोचरत्वाच्च न तत्र शक्तिग्रहावसरः। क्वचिदुपमानाच्छक्तिग्रह यथा-गोसदृशो गवय--

शब्द का ही ''घटानयन'' की कर्त्तव्यता के प्रतिपादन में सामर्थ्य कल्पित है। शब्द के आवाप (ग्रहण) एवं उद्वाप (परित्याग) के द्वारा प्रत्येक

का सामर्थ्य क्रमशः निश्चित होता है, यही ''शक्तिग्रह'' का क्रम है। इसी ''दिष्ट्यावर्धतेभद्रं पुत्रस्तेजातः'' इत्यादि वाक्यों के श्रवण से श्रोता के मुख विकासादि चिह्नों से हर्ष का अनुमान होता है और इस हर्ष का तुम्हारा पुत्र हुआ इस शब्द के अतिरिक्त दूसरा कारण भी नहीं है। शब्द से ही पुत्र जन्म का निश्चय करके उस ज्ञान के प्रति अन्वय व्यतिरेक से ''यह शब्द ही ज्ञान उत्पन्न कराने वाला है'' इस प्रकार कल्पना करके पहले बताए अनुसार यहाँ भी पद शक्ति का ग्रहण होता है। इस प्रकार यहाँ ब्रह्म ज्ञान की प्रवृत्ति आदि के उत्पन्न होने में ब्रह्म अगोचर होने से शब्द की शक्ति का उपयोग नहीं कर सकते। कहीं उपमान से भी शक्तिग्रह होता है जैसे-नीलगाय गोसदृशय है।

इति वाक्यं श्रुतवतो नागरिकस्य कदाचिदरण्यगमनानन्तरं गोसदृशव्यत्क्यन्तरदर्शने पूर्वश्रुतवाक्यार्थस्मरणेन गोसादृश्याग्वयपदनिश्चयः। क्वचिद्वैधर्म्याद्यथा धिक्करभमतिदीर्घग्रीवं कठोरकण्टकाशिनमित्यादि निंदावाक्यश्रुतवतस्तादृशव्यक्तिदर्शने पूर्ववत् करभपदवाच्यत्वनिश्चयः। तदुभयं ब्रह्मणि न संभवति साधर्म्यवैधर्म्यशून्यत्वात्मानान्तरायोगाच्च। क्वचिदाप्तवाक्याद्यथाकम्बुग्रीवादिमान् घटपदवाच्य इति। तद्वदप्यत्र न संभवति। उद्देश्यांशोपस्थापकपदाभावात्। क्वचित्प्रसिद्धार्थपदसामानाधिकरण्यात्। यथेह सहकारतरौ पिको रौतीति कर्तरि प्रत्यक्षप्रसिद्धे पिकपदवाच्यत्वनिश्चयः।

''गोसदृशो गवयः'' अर्थात् नील गाय गाय जैसी ही होती है इस वाक्य को सुनकर कोई मनुष्य कभी वन में जाकर गाय सदृश अन्य जीव को देखता है तब पहले सुने वाक्यार्थ को स्मरण करके गाय के सदृश होने से यही गवय (नीलगाय) है ऐसा निश्चय करता है। कहीं वैधर्म्य से भी शक्तिग्रह होता है। जैसे ''ऊँट को धिक्कार है जो लम्बा गर्दन वाला है और कण्टक युक्त घास खाता है'' इत्यादि निन्दा वाक्य को सुनकर ऐसे जीव को देखने के पश्चात् पहले की तरह यही ऊँट है ऐसा निश्चय होता है। इन दोनों उपमान से ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता क्योंकि ब्रह्म के समान धर्म वाला भी कोई नहीं है। और ब्रह्म के विपरीत धर्म वाला भी कोई नहीं है। इसलिए किसी भी प्रमाणान्तर से ब्रह्म का ज्ञान सम्भव नहीं है। कहीं आप्त वाक्य जैसे-

कम्बुग्रीवादिमान् "घट" पद से वाच्य होता है उस प्रकार ब्रह्म का ज्ञान सम्भव नहीं है क्योंकि यहाँ उद्देश्य अंश के उपस्थापक पद का अभाव है। कहीं प्रसिद्धार्थ पद समानाधिकरण जैसे-आम्र वृक्ष पर कोयल बोल रही है इस वाक्य में बोलने वाली प्रत्यक्ष प्रसिद्ध कोयल का निश्चय होता है।

यथा वज्रहस्तः सहस्राक्षः पुरन्दर इत्यादौ वज्रहस्ताद्याकृति-विशिष्टपुरन्दरादिपदवाच्यत्वाध्यवसायस्तद्वदपि नेह सम्भवति निर्विकल्पे तस्मिन्सर्वस्यापि पदस्याप्रसिद्धार्थत्वात्। क्वचिद्वाक्यशेषाद्यथा यववराहादि शब्दानां पदान्यौषधयोम्लायन्त्यथैता मोदमाना एवावतिष्ठन्ति वराह मनुधावन्तीत्यादिवाक्यशेषात्कंगुकंकादिव्यावृत्या वाच्यार्थविशेषनिश्चयः। यथा वा स्वर्गयूपाहवनीयादि शब्दानां यन्न दुःखेन संभिन्नमित्यादि वाक्य-शेषादलौकिकार्थविशेषनिर्णयः। तद्वदपि ब्रह्मणि न सम्भवति। वाक्यशेष-स्यापि ब्रह्मविषयित्वासम्भवात्। नच ब्रह्मविदाप्नोति परमिति परमपुमर्थ-साधनं-

जैसे-व्रजहस्तः सहस्राक्षः पुरन्दरः इस वाक्य से हाथ में वज्र धारण करने वाले हजार नेत्रों वाले इत्यादि आकृति बताने वाले पदों से इन्द्र का निश्चय होता है। किन्तु ब्रह्म में यह भी सम्भव नहीं है क्योंकि निर्विकल्प ब्रह्म में किसी भी पद का अर्थ प्रसिद्ध नहीं है। कहीं वाक्य शेष से भी अर्थ ग्रह होता है जैसे यव वराहादि शब्दों का "अन्य औषधियाँ मुरझा गई है" "प्रसन्नता से रहती है" "वराह के पीछे दौड़ते है" इत्यादि वाक्य शेष से "कंगुकंक" आदि औषधियों को छोड़कर यव-वराह औषधी विशेष में वाच्यार्थ निश्चय होता है। अथवा जैसे-स्वर्ग, यूप, आहवनीय आदि शब्दों का दुःखों से रहित इत्यादि वाक्य शेष से अलौकिकार्थ विशेष का निर्णय होता है। इस प्रकार वाक्य शेष से भी ब्रह्म का ज्ञान सम्भव नहीं है। क्योंकि वाक्यशेष का विषय ब्रह्म में असम्भव है। यदि "ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला मोक्ष प्राप्त करता है इस परं पुरुषार्थ के साधन को ब्रह्मज्ञान कहते हैं अर्थात्--

ब्रह्मज्ञानमित्यभिहिते किं तद्ब्रह्मेत्याकांक्षायां सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इति ब्रह्मलक्षणमुपदिशति। तथा च सत्यादिपदोपस्थापिताद्वितीये

वस्तुन्येव ब्रह्मपदशक्तिग्रहो भविष्यति इति वाच्यम्, सत्यादिपदेभ्योऽपि निर्विकल्पोपस्थितेरसम्भवात्तत्रापि वाक्यशेषान्तरानुधावनेऽनवस्थाशक्येन समं सम्बन्धाग्रहान्न। लक्षणापि नहि लक्षणयैव लक्ष्यस्वरूपोपस्थितिः तस्याः स्मारकत्वात्। स्मरणस्य च पूर्वज्ञानजन्यत्वनियमात्। किंच नाजहत्स्वार्था विशिष्टोपस्थितिः प्रसंगात्। तत्त्वमस्यादिवाक्ये--

इस प्रकार के ब्रह्मज्ञान में वह ब्रह्म कौन है? इस प्रकार पूछने पर ब्रह्मवादी "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" अर्थात् सत्य ज्ञान और अनन्त इत्यादि लक्षणों से युक्त ब्रह्म है ऐसा उपदेश करते हैं। तब सत्यादि पद से उपस्थापित जो अद्वितीय वस्तु है उसमें ब्रह्म पद शक्तिग्रह होगा ऐसा कहें तो? इस पर सिद्धान्त पक्ष में कहते हैं सत्य आदि पदों से निर्विकल्प ब्रह्म की उपस्थिति सम्भव नहीं है। वहाँ पर वाक्यशेषान्तर के अनुधावन में अनवस्था होने तथा शक्य के साथ में लक्ष्य का सम्बन्धग्रह न होने के कारण लक्षणा भी नहीं है क्योंकि ब्रह्म में लक्षस्वरूप की उपस्थिति लक्षणा से ही नहीं बन सकती। लक्षणा स्मरण कराती है और स्मरण पूर्वज्ञान से ही होता है इस नियम से पूर्व ज्ञान रहित ब्रह्म में लक्षणा नहीं बन सकती। अजहत्स्वार्था से भी विशिष्ट उपस्थिति का प्रसंग नहीं बनता क्योंकि "तत्त्वमसि" आदि वाक्य में

विरोधेनानन्वयापत्तेः। नापि जहदजहत्स्वार्था तस्याः शक्य सम्बन्धवति प्रमाणान्तरोपस्थिते देवदत्तादौ सम्भवः प्रमाणान्तरानुपस्थिते सर्वसम्बन्धशून्येऽनवकाशात्। अतएव न जहत्स्वार्थापि तदंगीकारे यथा गंगापदलक्ष्यस्य तीरस्यागंगात्ववत्सत्यादिपदलक्ष्यस्यासत्यत्वादि स्याद्वा-च्यत्वस्य सर्वात्मना परित्यागात्। नापि गौणी तत्र सम्भवति सर्वसादृश्य शून्यत्वान्मायावादमते प्रभ्वादिगुणायोगे न गौण्याः स्वीकारः। नापि व्यंजना वृत्तिस्तत्र सम्भवति तस्या निःसंबंधे अप्रसरात्। तस्मान्निर्विशेषे वृत्तिमा- त्रायोगान्न निर्विशेषे पदविधया वाक्यविधया चोपनिषन्मानम्। मम तु मते प्राकृताप्राकृत द्विविधभेदभिन्नाचिद्विशेषरहितमेव निर्विशेष-मिति। नास्मत्प्रतिबन्दी।

विरोध होने से अन्वय नहीं हो सकता। उस ब्रह्म में जहदजहत् स्वार्था भी सिद्ध नहीं होती। यह लक्षणा शक्य सम्बन्ध वाली व प्रमाणान्तर

की उपस्थिति करने वाली होने से देवदत्त आदि में तो सम्भव है परन्तु प्रमाणान्तर की जहाँ उपस्थिति नहीं है और जो सर्व सम्बन्ध शून्य है उसमें उक्त लक्षणा से शक्तिग्रह नहीं होता। जहत्स्वार्था भी असमर्थ है। उसको स्वीकार करने से जैसे गंगा पद का लक्ष्य जो तीर है उसमें गंगात्व नहीं है। उसी प्रकार सत्यादि पद का लक्ष्य जो ब्रह्म है उसमें असत्यत्व आदि का योग हो जाएगा क्योंकि वाच्यार्थ का जहत्स्वार्था में सर्वस्व त्याग है। गौणी भी संभव नहीं है क्योंकि ब्रह्म सब सादृश्य से शून्य है। मायावादी प्रभु आदि गुण का योग ब्रह्म में नहीं मानते इस कारण गौणी स्वीकार नहीं है। व्यञ्जना वृत्ति भी ब्रह्म में असम्भव है क्योंकि बिना सबन्ध के व्यञ्जना नहीं होती। निर्विशेष में किसी भी वृत्ति की योग्यता नहीं होती। अतः पद तथा वाक्य विधा से मायावादियों के अनुसार ब्रह्मज्ञान में उपनिषद् भी प्रमाण नहीं हो सकते। मेरे (श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी के) मत में तो प्राकृत-अप्राकृत दोनों से भिन्न अचित् विशेषता से रहित ही निर्विशेष है। इसलिए हमारे मत में प्रतिबन्दी नाम का बन्धन नहीं है।

प्रकृतिमनुसरामः। ''विष्णोर्नु कं वीर्य्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि इति'' न ते विष्णोर्जायमानो न जातो देवमहिम्नः परमन्तमायेति'' ''सहस्रधा महिमानः सहस्र''इत्यादि श्रुत्यन्तरेभ्यश्च ब्रह्मणोऽनन्तकल्याणगुणैकराशित्वं सिद्धं व्यूहांगिनमिति। वासुदेवप्रद्युम्ना-निरुद्धसंकर्षणरूपसमुदायो व्यूहः तस्यांगिनं वयं ध्यायेम इत्यर्थः। यथोक्तं श्रीभागवते-''वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयं, अनिरुद्ध इति ब्रह्मणः मूर्त्तिव्यूहोऽभिधीयते। स विश्वतैजसप्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः, अर्थेन्द्रियाशय-ज्ञानैर्भगवान् परिभाव्यते।'' ''अंगोपांगायुधाकल्पैर्भगवाँस्त-च्चतुष्टयम्। बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिं भगवान् हरिरीश्वर'' इति।

अब स्वसिद्धान्त की चर्चा करते हैं-''विष्णु के वीर कर्मों का मैं अब प्रवचन करता हूँ। जिन विष्णु ने पृथ्वी सम्बन्धी लोकों का निर्माण किया है।'' ''विष्णु के विना न कोई उत्पन्न हुआ है और न उत्पन्न होने वाला है। इनकी महिमा से परम से परम लोकों का निर्माण हुआ है।'' ''इनकी महिमा हजारों प्रकार से है।'' इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म का अनन्त

कल्याणगुणैकराशित्व सिद्ध है।

अब ''व्यूहाङ्गिनं'' इस पद की व्याख्या करते हैं-वासुदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध संकर्षण रूप समुदाय व्यूह है उसके अङ्गी का हम ध्यान करें यह इस पद का तात्पर्य है। जैसे श्रीमद्भागवत में कहा गया है-

स्वयं पुरुष ही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूप में मूर्ति व्यूह कहा गया है। उसे ही विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय इन चार वृत्तियों से अर्थ, इन्द्रिय, आशय और ज्ञान के द्वारा भगवान् माना जाता है। अंग, उपांग, आयुध और कल्प से भगवान् के चार स्वरूप हैं। भगवान् हरि ईश्वर चतुमूर्तियों को धारण करते हैं।

अत्रेदं बोध्यं वासुदेवो विश्वो जागर्त्यभिमानी सत्त्वाधिष्ठातृत्वात्, विश्वप्रद्युम्नस्तैजसः स्वप्नाभिमानी रजोऽधिष्ठातृत्वात्, संकर्षणः प्राज्ञः सुषुप्त्यभिमानी तमोऽधिष्ठातृत्वात्, निर्गुणत्वाज्जागर्त्यादिषु निर्विकार-त्वेनानुगतत्वादनिरुद्धस्तुरीयः। जागरणादिषु एकरूपात्मतत्त्वं एवं तत्तदधिष्ठित सत्वादितो जागर्त्तिस्वप्नसुषुप्तयो भवन्तीत्यर्थः। प्रमाणं श्रीभागवते द्रष्टव्यम्। अथ प्रधानेश्वरः प्रद्युम्नः। अनिरुद्धस्तु समष्टि देहान्तरात्मा। ब्रह्माण्डान्तर्यामी पुरुषाह्वयः व्यष्ट्यान्तरात्मा तु वासुदेवः।

इसमें यह जानना चाहिये कि जागर्त्यभिमानी और सत्व के अधिष्ठातृ होने से वासुदेव विश्व है, स्वप्नाभिमानी और रजोधिष्ठातृ होने से प्रद्युम्न तैजस है, सुषुप्त्यभिमानी और तमोधिष्ठातृ होने से संकर्षण प्राज्ञ हैं और निर्गुणत्व एवं निर्विकारत्व के कारण जागर्त्यादि में अनुगत होने से अनिरुद्ध तुरीय है। जागरणादि में एक रूप आत्मरूप आत्म तत्त्व ही उन-उन अधिष्ठातृ सहित सत्त्वादि से जागर्ति स्वप्न सुषुप्ति होते हैं ऐसा जानना चाहिये। इसके प्रमाण श्रीमद्भागवत में देखना चाहिये। प्रधान के ईश्वर प्रद्युम्न हैं। समष्टि देह के अन्तरात्मा जो अन्तर्यामी पुरुष है वही अनिरुद्ध है, और व्यष्टि के अन्तरात्मा वासुदेव हैं।

यथोक्तं प्रथमं महतः सृष्टं द्वितीयं त्वण्डसंस्थितं तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यत'' इति। सर्वोत्तमोऽनन्यापेक्षमहिमैश्वर्य्यः श्रीकृष्ण एव स्वयं रूपः। तस्य वासुदेवप्रद्युम्नानिरुद्धसंकर्षणरूपो व्यूहश्चतुःकरणम्।

अतः सर्वेषां चित्तबुद्धिमनोऽहंकाराणामधिष्ठातृत्वं व्यूहस्य श्रूयते। यानि अस्मदादिचित्ताद्यधिदैवतानि तानि भगवतश्चित्तादीनि। यथादर्शे बिम्बिनोऽगानि प्रतिबिम्बे यथास्थानमेव प्रतीयेरंस्तथैव भगवतोऽपि चित्तादिस्थानीया वासुदेवादयोऽगानि विश्वस्मिन् यथास्थानमेव चित्ताद्यधिष्ठातृत्वेन श्रूयते। चन्द्ररुद्रादीनां रूपान्तरत्वेन तदंशत्वान्न विरोधइति।।

जैसे कहा गया है-पहले महत् की सृष्टि दूसरी अंड की संस्थिति और तीसरी सब भूतों में स्थित इनको जानकर संसार से विमुक्त होता है (छूटता है)। सबसे उत्तम-अनन्यापेक्ष, (जिसको किसी की अपेक्षा नहीं) महिमैश्वर्य श्रीकृष्ण ही स्वयं रूप हैं। इनके वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, संकर्षण यह चतुर्व्यूह रूप चतुःकरण है। इसलिए सबके चित्त बुद्धि मन और अहंकार के अधिष्ठातृ व्यूह रूप हैं। सुना जाता है कि जो भी अस्मादादि चित्तों के अधिदेव हैं वे सभी भगवान् के चित्तादिकों के हैं जैसे दर्पण में विविध अंग प्रतिबिंब में यथा स्थान में ही प्रतिबिम्बित होते हैं उसी प्रकार भगवान् के चित्तादि स्थानों के वासुदेवादि अंग इस संसार में यथा स्थान में ही चित्तादि के अधिष्ठाता के रूप में सुने जाते हैं। चन्द्र रुद्रादिकों के रूपान्तर होने पर भी उनके अंश होने से कोई विरोध नहीं है।

अत्रायं विवेकः। भूतेभ्यः प्राणिनः श्रेष्ठास्तेभ्यो वै मनुजाः खलु, मनुजेभ्योऽमराः सर्वे देवेभ्यश्चतुराननः। ब्रह्मणः शंकरः श्रेष्ठस्तत्परो विष्णुरेव हि, तस्माच्छ्रेष्ठः शेषशायी तस्माच्छ्रेष्ठो विराट्विभुः। तस्माच्छ्रेष्ठो हि विज्ञेयो महाविष्णुर्महाविराट्। तस्माच्छ्रेष्ठः प्रधानेशः पुरुषाख्यो गुणात्मकः, तत्परो ब्रह्मविज्ञेयो वासुदेवः परात्परः। परमात्मा परंज्योतिर्निरीहो निर्गुणो विभुः, तदधिष्ठाता कृतिमान् स्वेच्छाचारी समस्तवित्। भावनीयश्च सर्वेषां गुणागुणविवर्जितः, कृष्णाख्यं परं ब्रह्म नित्यं-नित्यगुणाश्रयः। सर्वैश्वर्ययुतः साक्षात् सर्वमाधुर्य्यवान् स्वयम्।'' इति तत्त्वसागरोक्तेश्च सिद्धान्तरीत्यापि सर्वस्वरूपश्रेष्ठत्वेन--

यहाँ पर भगवन्निम्बार्काचार्यजी के सिद्धान्ताऽनुसार तत्त्वसागर में इस प्रकार वर्णन मिलता है कि-भूतों से प्राणी श्रेष्ठ है। प्राणी से मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्यों से सभी देवता और देवताओं से ब्रह्मा श्रेष्ठ है। ब्रह्मा से शंकर,

शंकर से विष्णु, विष्णु से शेषशायी भगवान् नारायण और उनसे विराट् श्रेष्ठ है। विराट् से भी महाविराट् महाविष्णु श्रेष्ठ है। महाविष्णु से भी श्रेष्ठ प्रधानेश हैं जिनको गुणात्मक पुरुष कहा गया है। उनसे श्रेष्ठ ब्रह्म है और भगवान् वासुदेव परात्पर हैं। यही परमात्मा, परम ज्योति, निरीह (चेष्टा रहित) निर्गुण और विभु है वही सबके अधिष्ठाता हैं। वही कृतिमान सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सर्वज्ञ सबके भावनीय सभी गुण अगुण से रहित जिनका परम पावन कृष्ण नाम है। वही परब्रह्म जो नित्य है। नित्य गुणों के आश्रय है। सर्वेश्वर है जो स्वयं साक्षात् सर्व माधुर्य सम्पन्न है। इस प्रकार सम्पूर्ण स्वरूप से श्रेष्ठ होने के कारण-

स्वयं भगवतः श्रीकृष्णस्यान्तरंगत्वाच्चतुर्णामपि नियम्यत्वं सुव्यक्तम्। अतः श्रीकृष्णस्तेषामधिष्ठाता तैः सेव्यश्च ब्रह्मादयस्तु वसुदेवादिद्वारा-नियम्यास्तदंशत्वात्। भूतादीनां च ब्रह्मादिद्वारा नियम्यत्वमिति। अतश्च व्यूहांगित्वेन सर्वप्रधानोऽशेषकल्याणगुणैकराशिः श्रीकृष्ण एव स्वयं भगवानवतारीति सिद्धम्। अवतारो नाम निज संकल्पपूर्वक भक्तजनाधीन व्यक्तिकृतविग्रहः। अवतारास्त्रिधाः लीलावताराः पुरुषावतारा गुणावताराश्च। तत्र लीलावताराः-चतुःसननारदवाराहमत्स्ययज्ञ--

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तरंग होने से यह चारों व्यूह नियम्य हैं इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण उनके अधिष्ठाता और सेव्य हैं। ब्रह्मादि तो वासुदेवादि के द्वारा नियम्य है। भूतादि ब्रह्मादि द्वारा नियम्य हैं इसलिए व्यूहाङ्गी होने के कारण सबसे श्रेष्ठ अनन्त कल्याण गुणैकराशि श्रीकृष्ण ही स्वयं अवतारी भगवान् हैं यह सिद्ध है। अपने संकल्पाऽनुसार भक्तजनों के अधीन रहते हुए भगवान् के द्वारा व्यक्त विग्रह को अवतार कहते हैं। अवतार तीन प्रकार के है । १-लीलावतार २-पुरुषावतार ३-गुणावतार। चतुः सनकादि, नारद, वाराह, मत्स्य, यज्ञ,-

नरनारायणकपिलदत्तहयग्रीवहंसपृष्णिगर्भऋषभदेवपृथु-नृसिंहकूर्मधन्वन्तरिमोहनीवामनपरशुरामरघुनाथव्यासबलभद्रहयग्रीव-कृष्णबुद्धकल्कीत्यादयः। लीलावतारा अपि चतुर्विधाः-आवेशावताराः प्रभावावताराः विभावावताराः स्वरूपावताराश्चेति। तत्रावेशावतारा

द्विविधाः-स्वांशावेशावतारा शक्त्यावेशावताराश्चेति। तत्रांशावताराः कपिलपरशुरामादयः। शक्त्यावेशावतारास्तु यत्र एकैकशक्तिसंचारमात्रं- ते च चतुःसननारदपृथुप्रभृतयः। अधिकशक्तिसंचारे च प्रभावावतारत्वमेव चतुःसनादीनां प्रभावावतारश्च। यत्राधिकशक्तिसंचारः ते च हंसऋषभ- धन्वन्तरिमोहनीव्यासादयः, ततोऽप्यधिकसंचारो येषु ते विभवावताराः-

नर, नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, पृष्णिगर्भ, ऋषभदेव, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, रघुनाथ, व्यास- बलभद्र, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि आदि लीलावतार हैं। इन लीलावतारों को चार प्रकार के बताए गए हैं। १-आवेशावतार २-प्रभावाऽवतार ३-विभवावतार ४-स्वरूपाऽवतार।

आवेशाऽवतार भी दो प्रकार के हैं। १-स्वांशावेशावतार २-शक्त्यावेशावतार। कपिल, परशुराम आदि स्वांशावेशावतार हैं। जहां एक-एक शक्ति संचार मात्र है उसे शक्त्यावेशावतार कहते हैं जैसे-चतुः सनकादिक, नारद, पृथु आदि। अधिक शक्ति संचार में प्रभावाऽवतार होते हैं चतुः सनकादिकों को प्रभावाऽवतार भी कहते हैं। उनसे अधिक शक्ति संचार वाले हंस, ऋषभ, धन्वन्तरि, मोहनी, व्यास, आदि हैं। उनसे भी अधिक शक्ति संचार जिनमें है वे विभवावतार हैं जैसे-

यथा मत्स्यकूर्मनरनारायणवाराहहयग्रीवपृष्णिगर्भबलभद्र- यज्ञादयः। सर्वतोऽप्याधिक्याः स्वरूपावताराः ते तु नृसिंहो रामःकृष्णश्चेति। यद्वा स्वरूपावतारो नाम सर्वस्वरूपश्रेष्ठः सर्वमाधुर्यवान् स्वयमेव भगवानखिलेश्वरः। इतरसजातीयतया स्वरूपं प्रकटयन् विराजमान इति गूढं परब्रह्ममनुष्यलिंगमित्यादिप्रमाणात्। श्रीकृष्ण एव स्वयं भगवांस्त- स्मादधिकः समश्च कोऽपि नास्तीत्युक्तमधस्तात्। वैकुण्ठनाथस्तु श्रीकृष्ण- स्य विलासः तुल्यशक्तिधारित्वात्। अथ पुरुषावताराः ते त्रयः-प्रथमपुरुषो महत्स्रष्टा कारणार्णवशायी प्रकृत्यन्तर्यामी स प्रद्युम्नांशोऽपि महाविराड- न्तर्यामित्वेन संकर्षणांशस्तस्यानन्तत्वात्।

मत्स्य, कूर्म, नर, नारायण, वराह, हयग्रीव, पृष्णिगर्भ, बलभद्र आदि। सबसे अधिक शक्ति संचार वाले स्वरूपाऽवतार हैं। जैसे-नृसिंह,

राम, कृष्ण अथवा जो सभी स्वरूप में श्रेष्ठ हैं। सभी माधुर्य सम्पन्न हैं। स्वयं ही अखिलेश्वर भगवान् हैं उसी का नाम स्वरूपाऽवतार है। वही इतर सजातीय स्वरूप प्रगट करके विराजमान है। ''गूढं परब्रह्म मनुष्य लिङ्गं'' इत्यादि प्रमाणों से श्रीकृष्ण ही भगवान् हैं उनसे अधिक की क्या कहें उनके समान भी कोई नहीं है। इस प्रकार श्रुति स्मृति में कहा गया है। तुल्य शक्ति धारी होने के कारण उनके नीचे विराजमान वैकुण्ठनाथ श्रीकृष्ण के विलास मात्र हैं। अब पुरुषावतार बताते हैं- पुरुषावतार तीन प्रकार के हैं। १-प्रथम पुरुष २-महत् स्रष्टा ३-कारणार्णवशायी। प्रकृति के अन्तर्यामी प्रद्युम्नांश महाविराट् के अन्तर्यामी होने से संकर्षण है क्योंकि संकर्षण अनन्त है।

द्वितीयः पुरुषो गर्भोदशायी अनिरुद्धांशोऽपि समष्टिविराडन्तर्या- मित्वेन प्रद्युम्नांशं कामस्तस्यैव तद्गर्भधारणासामर्थ्यात्। अतएव प्रधानेश इत्युच्यते। तृतीयः पुरुषः क्षीरोदशायी व्यष्टि विराडन्तर्यामी अनिरुद्धांशः समष्टि देहान्तरात्मा। अथ व्यष्ट्यंतर्यामी तु वासुदेवांशः पुरुषाह्वयश्चतुर्थः। अथ गुणावताराः-गुणेषु सत्त्वादिषु अवताराः गुणावताराः। सत्त्वगुणे विष्णुः पालनकर्त्ता स वासुदेव एव स च लक्ष्मीद्वारा पालयति तथोक्तं श्रीशुकेन-''श्रीस्वाधृताः सकरुणेन निरीक्षणेन, यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकानि''त्यादि। रजोगुणे ब्रह्मा सृष्टिकर्ता गर्भोदशायी नाभिपद्मोद्भवः प्रद्युम्नांश एव।

द्वितीय पुरुष गर्भोदशायी अनिरुद्ध के अंश भी समष्टि विराट् के अन्तर्यामित्व के कारण प्रद्युम्नांश काम है इसलिए उनमें गर्भधारण का सामर्थ्य नहीं होने से उनको प्रधानेश कहते हैं। तृतीय पुरुष क्षीरोदशायी व्यष्टि विराट् अन्तर्यामी अनिरुद्ध के अंश हैं जो समष्टि देह के अन्तरात्मा हैं। चतुर्थ पुरुष व्यष्टि अन्तर्यामी वासुदेव के अंश हैं। अब गुणावतार का वर्णन करते हैं-सत्वादि गुणों के अवतार को गुणावतार कहते हैं। सत्वगुण के अवतार पालनकर्ता भगवान् विष्णु हैं। श्रीविष्णु वासुदेव ही हैं जो लक्ष्मी द्वारा समस्त विश्व का पालन करते हैं। श्रीशुकदेवजी ने कहा है-

''श्रीस्वाधृता सकरुणेन निरीक्षणेन यत्रस्थितैधयत साधिपतींस्त्रि- लोकान्'' अर्थात् लक्ष्मीजी अपनी करुणा से जहाँ स्थित होकर अधिपति

सहित तीनों लोकों को देखती है और धारण करती है इत्यादि। रजोगुण के अवतार सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हैं जो गर्भोदशायी के नाभि कमल से उत्पन्न हुए इसलिए प्रद्युम्न के अंश हैं।

स्वयमेवेन्द्रो यज्ञ इतिवत्स्वयमेव ब्रह्मापि कस्मिंश्चित्कल्पे भवतीति तत्त्वम्। यदि तु क्वचित्कल्पे तादृशपुण्यकारी जीव एव ब्रह्मा तर्हि भगवतः प्रद्युम्नस्य सृष्टिः शक्तिप्रवेशेनावेशावतार एव ब्रह्मा, ''तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदित''इत्यादि प्रमाणात्। किंच सत्यलोकांतःसमष्टिविराट्स्थानो ब्रह्मण एव विग्रहः प्राकृतः स ब्रह्मा इत्युच्यते। अस्य जीवः सूक्ष्मो हिरण्यगर्भोऽयमपि ब्रह्मा। अस्यान्तर्यामी त्वीश्वर एव। तमोगुणे रुद्रः संहारकर्त्ता स संकर्षणांश एव। भ्रूजन्मा सर्वसंहर्त्ता रुद्रः संकर्षणांश इति प्रमाणात्। किंचायं सदाशिवो निर्गुणश्चेत् तदा सगुणशिवस्यांशी अत एवास्य विष्णुना साम्यमाधिक्यं च विरंचितः।

जैसे स्वयं यज्ञ भगवान् ही इन्द्र हुए वैसे ही किसी कल्प में ब्रह्मा होते हैं यह तत्त्व है। यदि किसी कल्प में कोई जीव अपने पुण्य प्रताप से ब्रह्मा होता है तब तो भगवान् प्रद्युम्न के सृष्टि करने की शक्ति प्रविष्ट होने से ब्रह्मा को आवेशाऽवतार कहा जा सकता है।

तस्याऽपि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः।
सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः।।

अर्थात् उसका भी जो द्रष्टा ईश्वर है जो सम्पूर्ण कूटस्थ अखिलात्मा है उस सृजनकर्ता का भी मैं सृजन करता हूँ। यह सृष्टि मैं अपनी संकल्प से ही सम्पन्न करता हूँ। इत्यादि श्रीमद्भागवत के प्रमाण से उक्त बात सिद्ध होती है। कोई कहते हैं सत्य लोकान्तर जो समष्टि विराट् का स्थान है वही ब्रह्मा का विग्रह है इसको प्राकृत ब्रह्मा कहा जाता है। इसका जीव सूक्ष्म हिरण्यगर्भ है यह भी ब्रह्मा है। इसके भी अन्तर्यामी तो ईश्वर ही हैं। तमोगुण के अवतार संहारकर्त्ता रुद्र है जो संकर्षण के अंश हैं-''भ्रूजन्मा सर्वसंहर्त्ता रुद्रः संकर्षणांशकः'' अर्थात् भृकुटि से जिनका जन्म हुआ है जो सबके संहर्त्ता हैं वह रुद्र संकर्षण के अंश हैं यह प्रमाण प्राप्त होता है। यदि सदाशिव निर्गुण हैं तो ये

सगुण-शिव के अंशी है इसलिए इनकी विष्णु से समानता है और ये ब्रह्मा से श्रेष्ठ हैं।

अथ श्रीब्रह्मरुद्रमूर्तीनां भक्तिप्रवर्तकत्वादाचार्यत्वमपि बोद्धव्यं किंच सनकश्रीब्रह्मरुद्राः वैष्णवाः क्षितिपावनाः इत्यादि पाद्मेयाः प्रोक्ता। वेदतन्त्राभ्यामाचार्य्यैः पद्मजादिभि-श्चेति श्रीभागवते चत्वारः सम्प्रदाय प्रवर्त्तकाचार्य्या उक्ताः।

श्रीब्रह्मा रुद्र को भक्ति प्रवर्तक आचार्य भी जानना चाहिये। क्योंकि पद्मपुराण में कहा गया है कि-'' सनक श्रीब्रह्मरुद्राः वैष्णवाः क्षितिपावनाः'' अर्थात् श्रीसनकादि ब्रह्मा रुद्र आदि वैष्णवजन पृथ्वी को पवित्र करते हैं। वेदतन्त्र के आचार्यों पद्मजादि (ब्रह्मादि) चार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं इस प्रकार से श्रीमद्भागवत में वर्णन है।

अथ सर्वखल्विदं ब्रह्मेत्यादि वाक्यैः सर्वव्यापकं ब्रह्मेति स्थितम्। तच्च द्विविधम् अन्तर्यामी बहिर्यामीभेदात्। अन्तर्यामित्वं नामान्तःस्थित्वा प्रेरकत्वं''य आत्मनि तिष्ठन्नि''त्यादि श्रुतेः ''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठती''त्यादि स्मृतेश्च। अयं चांतर्यामीश्वरः उपासकानामपरोक्षोऽपि भवति। यथोक्तं श्रीभागवते ''अंतर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं वपुर्यथेच्छानुग्रहीत-रूपम्, पौत्रस्तव श्रीललनाललामं दृष्टास्फुरत्कुंडलमंडिताननमिति'' ज्ञानिनां तु तावन्मात्र रूपेण प्रतिभासते। अतिभावनयाविधुरस्य मृतभार्याया अपरोक्षवत् परोक्षस्वभावस्यापि ब्रह्मण अपरोक्षं भवति। स चांतर्यामी द्विविधः- चेतनान्तर्यामी अचेतनान्तर्यामी चेति।

आगे कहते हैं कि-''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' इत्यादि वाक्यों से सर्वव्यापक ब्रह्म सिद्ध है। यह ब्रह्म अन्तर्यामी और बहिर्यामी के भेद से दो प्रकार का है। अन्तर्यामी रूप से सब में स्थिर रहकर प्रेरणा करते हैं। श्रुति प्रमाण है-''यः आत्मनितिष्ठन्'' आदि। स्मृति प्रमाण है-''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'' अर्थात् हे अर्जुन ! ईश्वर सम्पूर्ण भूतों के हृदय में स्थित है। यह अन्तर्यामी ईश्वर उपासकों के लिए अपरोक्ष भी होता है श्रीमद्भागवत में कहा गया है-अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रंस्वपुर्यथेच्छानुग्रहीतरूपम् पौत्रस्तव श्रीललनाललामम् दृष्टास्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम्। भीतर और बाहर कमलदल

के समान नेत्र वाले भगवान् अपने भक्त की इच्छा से स्वयं को प्रकट करते हैं। उन भगवान् का तुम्हारे पौत्र रूप में कुण्डल मण्डित मुखारविन्द का दर्शन करते हैं। ज्ञानियों को तो उनका रूप आभास मात्र होता है जैसे-मृत पत्नी के वियोग में अत्यन्त प्रेम के कारण विधुर पति को सर्वत्र स्त्री की स्फुरणा होती है। परोक्ष स्वभाव होने पर भी ब्रह्म सब प्रकार से अपरोक्ष है। ब्रह्म का अन्तर्यामी स्वरूप दो प्रकार का है। १-चेतनाऽन्तर्यामी २-अचेतनान्तर्यामी।

तत्र चेतनान्तर्याम्युक्तः। अचेतनान्तर्यामी च यः पृथव्यां तिष्ठन्नित्यादि श्रुत्यानुसन्धेयः। बहिर्यामीत्वं तु बहिः स्थित्वा नियामकत्वम्। तच्च श्रीगुरुचरणारविन्दे प्रसिद्धमेव। यथोक्तमुद्धवेन-'योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्य चैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ती'त्यादि। अथ मन्वन्तरावताराः। ऋषभधर्म्मसेतुविष्वक्सेनाजितवामनवैकुण्ठहरिसत्यसेनयज्ञविभुबृहद्भानु समुदाययोगेश्वराः। अथ युगावताराः। शुक्लरक्तपीतकृष्णाः। अर्चावतारो द्विविधः-आराधितस्वयंव्यक्तिभेदात्। गोभक्तजनैः पूज्यत्वेन आराध्यमन्दिरादौ स्थापितो यः स आराधितार्चावतार इत्युच्यते। गोपालप्रतिमां कुर्याद्विणुवादनतत्परां, बर्हापीड़ां घनश्यामां द्विभुजामूर्द्धसंस्थितामित्यादिप्रमाणात्।

चेतनान्तर्यामी का स्वरूप पूर्व में बताया गया है। अचेतनान्तर्यामी-''यः पृथिव्यां तिष्ठन्'' इत्यादि श्रुतियों के अनुसार अनुसन्धान करना चाहिये। बहिर्यामित्व तो बाहर स्थित होकर नियमन करना है। यह श्रीगुरुचरणारविन्द में प्रसिद्ध है जैसा कि उद्धव कहते हैं-योऽन्तर्बहिष्तनुभृताशुभं विधुन्वन्, आचार्यचैत्यवपुषास्वगतिं व्यनक्ति। अर्थात् जो शरीरधारियों के भीतर और बाहर के अशुभ को नष्ट करते हैं ऐसे चैतन्य वपु आचार्य के द्वारा अपनी गति प्रकट करते हैं। अब मन्वन्तर अवतार का वर्णन करते हैं। ऋषभ, धर्मसेतु, विष्वक्सेन, अजित, वामन, हरि, सत्यसेन, यज्ञ विभू, वृहद्भानु आदि योगेश्वरों के समुदाय मन्वन्तरावतार कहलाते हैं। शुक्ल, रक्त, पीत, कृष्ण, आदि क्रमशः सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग में होने वाले वर्ण है। अर्चावतार दो प्रकार के हैं आराधित और स्वयंव्यक्ति। भक्तजनों के द्वारा पूजन के लिए आराध्य मन्दिर आदि में स्थापित जो विग्रह हैं उनको

आराधित अर्चावतार कहते हैं। जैसे कि कहा गया है--

गोपाल प्रतिमां कुर्याद्वेणुवादनतत्परां,
बर्हापीड़ां घनश्यामां द्विभुजामूर्धसंस्थिताम्।।

अर्थात् वेणु वादन में तत्पर ऊँचे उठे हुए दो भुजा वाली मोर मुकुटयुक्त घनश्याम गोपाल की प्रतिमा बनावें। इत्यादि वचन प्रमाण हैं।

आराधकभक्तजनाधीनाखिलात्मसंस्थितिरेवार्चावतार स्वभावः शैलादिभेदेन यागाधिष्ठानमष्टधा तथा श्रीमद्भागवते-''शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती। मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधास्मृता। चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरमिति।'' किंचाचलायां न कृष्णस्य ह्यावाहनविसर्जने प्रत्ययतारतम्येन चलायां स्यान्न वा भवेत्। लेप्यासैकतयोर्द्वयं शालिग्रामे न सर्वथा। शैली काष्ठमयी लौही हार्दी मणिमयीषु हि। स्नानभूषादिकं देयं सर्वथा हरिवल्लभैः। लेप्या लेख्या सिकता स तत्तु देयं यथार्हतः। सुलेप्य लेख्ययोः कार्यं परिमार्जनमेव हि। सैकतायां तु सर्वं तद्विना स्नानसमर्हणम्।

आराधक भक्तजनों के अधीन अखिलात्मसंस्थिति ही अर्चावतार का स्वभाव है। भगवान् की प्रतिमा निर्माण में शैलादि भेदों से भगवान् के आठ प्रकार के अधिष्ठान बताए गए हैं जिनका श्रीमद्भागवत में इस प्रकार वर्णन मिलता है-शैलीदारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती, मनोमयी, मणिमयी, प्रतिमाष्टविधा स्मृताः अर्थात् शैली-(पाषाण की) दारुमयी (लकड़ी की) लौही (लोहे की), लेप्या (मिट्टि आदि लेपन से निर्मित) लेख्या (चित्र) सैकती (बालु मिट्टी की) मनोमयी (मन में विनिर्मित) मणिमयी (रत्नादि से विनिर्मित) ये आठ प्रकार की प्रतिमा हैं। ये सभी प्रतिमाएं १-चल २-अचल भेद से पुनः दो प्रकार की हैं। जिनकी प्रतिष्ठा जीव और मन्दिर में होती है इनमें से भगवान् कृष्ण की अचला प्रतिमा को आवाहन विसर्जन नहीं किया जाता। आवाहन विसर्जन तो चल प्रतिमाओं का होता है। किन्हीं चल प्रतिमाओं का आवाहन विसर्जन होता है-लैप्या और सैकती में आवाहन विसर्जन दोनों होता है। शालिग्राम में आवाहन विसर्जन नहीं होता। पाषाण काष्ठ रत्न और मनोमयी प्रतिमा भूषणादिक शृङ्गार अर्पण करने

योग्य हैं। लेप्या, लेख्या और सैकती के विषय में यथायोग्य पूजा की जा सकती है। लेप्य लेख्य प्रतिमा में परिमार्जन किया जा सकता है, स्नान नहीं और सैकती में स्नान के अतिरिक्त सम्पूर्ण पूजा हो सकती है।

अथ स्वयंव्यक्तः-''शालिग्रामः स्वयं व्यक्तिरनादि सिद्ध एव तु, शालग्रामेऽपि भगवानाविर्भूतोयथाहरिः। नतथान्यत्रसूर्यादौ वैकुण्ठेषु च-सर्वशः, शिलात्वामलकी तुल्या सूक्ष्मा चातीव या भवेत्। तस्यामेव सदा ब्रह्मन् श्रिया सह वसाम्यहम्। शालिग्रामोद्भवो देवो देवो द्वारावतीभवः, उभयोः संगमो यत्र तत्र सन्निहितो हरिः। न तथा रमते लक्ष्म्या न तथा स्वपुरे हरिः, शालिग्रामे शिलाचक्रे यथा स रमते हरिः।

अब स्वयं व्यक्त अर्चावतार का वर्णन करते हैं। शालिग्राम को स्वयं व्यक्त अर्चावतार कहते हैं। जिनके विषय में कहते हैं-शालिग्राम स्वयं व्यक्त है, अनादि और सिद्ध है। शालिग्राम के रूप में भगवान् हरि जिस प्रकार से अवतीर्ण हुए हैं उस प्रकार सूर्यादि लोकों में और वैकुण्ठादि धामों में भी नहीं हुए हैं। भगवान् स्वयं ब्रह्मा से कहते हैं-शिलास्यामलकीतुल्या सूक्ष्माचातीवयाभवेत्, तस्यामेव सदा ब्रह्मन् श्रिया सह वसाम्यहम्। अर्थात् हे ब्रह्मन्, शालिग्राम की जो शिला आंवले के समान गोल और अत्यन्त सूक्ष्म हो उसमें मैं सदा लक्ष्मी सहित रहता हूँ। शालग्राम में उत्पन्न देव और द्वारावती में उत्पन्न देव दोनों का जहां संगम है वहां श्रीहरि सन्निकट हैं। भगवान् श्रीहरि न तो लक्ष्मी के साथ उतने प्रसन्न रहते हैं और न तो अपने धाम में जितने कि शालग्राम शिलाचक्र में भगवान् श्रीहरि प्रसन्न रहते हैं।

''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा, विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति वदन्ति तत्त्व-विदस्तत्त्वं यत् ज्ञानमद्वयब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते'' इत्यादौ प्रसिद्धेन ब्रह्मशब्देन श्रीकृष्णं विशिनष्टि। ब्रह्मेति यत्र स्वरूपेण गुणैश्च बृहत्वं स ब्रह्मशब्दस्य मुख्यार्थः। अयमर्थः-बृंहि वृद्धाविति धातो रौणादिकेन मन्प्रत्ययेन ब्रह्मपदस्य व्युत्पन्नत्वाद्योगवृत्या बृहद्वाचकत्वे तस्य बृहत्संकोचाभावात्। देशकालवस्तुगुणपरिच्छेदशून्यत्वं पर्य्यवस्यतीत्यतो ब्रह्मशब्दः भगवत्येव मुख्यवृत्त इति बृंहतो ह्यस्मिन् गुण इति श्रुतेश्च श्रीकृष्ण एव मुख्यवृत्तः।

अब ब्रह्म पद की व्याख्या करते हैं ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' ब्रह्मसूत्र के इस प्रथम सूत्र में जो ब्रह्म पद है यह भगवान् श्रीकृष्ण का ही वाचक है। तत्त्वविद् आचार्यों द्वारा इस सूत्र की व्याख्या में उस ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिये जिससे जो तत्त्व अद्वय ब्रह्म परमात्मा और भगवान् आदि शब्दों से जाने जानेवाले अद्वितीय तत्त्व का ज्ञान है। यह प्रसिद्ध है। ब्रह्म का अर्थ होता है जहाँ स्वरूप और गुणों के द्वारा बृहत् है वह ब्रह्म शब्द का मुख्यार्थ है। इसका तात्पर्य है बृंहि वृद्धौ इस धातु से औणादि गण से मन् प्रत्यय करके ब्रह्म पद की व्युत्पत्ति करने से योग वृत्ति के द्वारा बृहद् अर्थ वाचक हो जाता है। उस बृहद् का संकोच नहीं होने से देश, काल, वस्तु, गुणादि परिच्छेद शून्य है इसलिए ब्रह्म शब्द का भगवान् में ही मुख्य वृत्ति सिद्ध होती है। इसमें श्रुति प्रमाण है ''बृंहतोह्यस्मिन् गुणाः'' अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण गुण बढते हैं यह वृत्ति भगवान् श्रीकृष्ण में ही सिद्ध होती है।

अन्यत्र त्वौपचारिकः। यस्य पादनखज्योतिषापरं ब्रह्मेति शब्द्यते ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्। पूर्वेतरन्यन्नखमण्डलत्विषेत्यादौ भगवद्विग्रहप्रभाया एव ब्रह्मशब्दार्थत्वोक्तेश्च, ब्रह्म परमात्मा भगवच्छब्दानां सामानाधि-करण्योक्तेश्च। शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते, मैत्रेय भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे। संभर्त्तेति तथा भर्त्ता भकारार्थो द्वयान्वितं नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थः तथा मुने। ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा। वसति तत्र भूतानि भूतात्मनोऽखिलात्मनि स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थः सतोऽव्ययः।

अन्यत्र तो मात्र औपचारिक है। जिनकी नख ज्योति को परब्रह्म शब्द से अभिहित किया गया है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि मैं ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ। श्रीमद्भागवत में अक्रूरजी के शब्द हैं-जिनकी नख मण्डल की कान्ति से बहुत जीव संसार से तर गये। भगवद् विग्रह की प्रभा को ही ब्रह्म शब्द से जानने के कारण ब्रह्म परमात्मा और भगवान् शब्दों का सामानाधिकरण्य कहा गया है। ''बृहद् वैष्णव'' ग्रन्थ में महर्षि पराशर मैत्रेय से कहते हैं कि हे मैत्रेय, सम्पूर्ण कारणों के कारण शुद्धमहाविभूति परब्रह्म को ही भगवान् शब्द से जाना जाता है। इसमें भकार के दो अर्थ हैं। १-

संभर्ता २-भर्त्ता। हे मुने इसी प्रकार नेता गमयिता और स्रष्टा गकार के अर्थ हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन समग्र का नाम भग है। उस अखिलात्मा में सम्पूर्ण भूत निवास करते हैं। और भगवान् अव्यय सम्पूर्ण भूतों में निवास करते हैं यह वकार का अर्थ है।

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः। एवमेष महाशब्दो मैत्रेय भगवानिति परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः। तत्र पूज्यपदार्थोक्ति परिभाषासमन्वितः। शब्दोऽयं नोपचारेण ह्यन्यत्र ह्युपचारतः। समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः तद्विश्वरूपवैरूप्यरूपमन्यद्धरेर्महत्। समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वरः देवतिर्यङ्मनुष्याख्या चेष्टावन्ति स्वलीलया। जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिका व्याहृतात्मिकेति वैष्णवे पराशरः।

ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज यह सभी भगवान् शब्द वाचक हैं इसमें त्याज्य गुण नहीं है। इसलिए हे मैत्रेय ! भगवान् महाशब्द परब्रह्म भूत श्रीवासुदेव के नाम में ही प्राप्त है। उसमें पूज्यपाद की अर्थोक्ति परिभाषा सहित यह परब्रह्म शब्द श्रीकृष्ण में औपचारिक नहीं अन्यत्र है। हे नृप, सम्पूर्ण शक्ति जिसमें प्रतिष्ठित है वही विश्वरूप वैरूप्य श्रीहरि का ही महत् स्वरूप है इसलिए वे ही जनेश्वर अपनी लीला के द्वारा देवतिर्यक् मनुष्यादि में समस्त शक्ति रूपादि चेष्टा प्रकट करते हैं। उन अप्रेमय भगवान् की व्यापिका व्याहृतात्मिका चेष्टा जगत् के उपकार के लिए है। वह कर्म के निमित्त से नहीं है।

एतत् सर्वमभिप्रेत्योक्तं श्रीभागवते ''अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरञ्च्योपहृतार्हणांभः। सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्को नाम लोके भगवत्पदार्थ''इति। एवमोंकारोऽपि भगवद्वाचक एव। रक्षणार्थस्यावतेः खलु रूपमेतत्, अवतेष्टिलोपश्चेतिसूत्रात्, ओमिति ब्रह्मेत्यादि श्रुतेः। एवं च तिसृणां व्याहृतीनां वर्णत्रयात्मकौंकारव्याख्यानरूपत्वात्। तासामपि भगवद्वाचकत्वमेव। तथाहि भूरिति बहुत्वार्थस्य भवतेः क्वपि रूपमेतत्। इममेवार्थं भगवानाचार्य्योऽप्याह परमिति। परं पूर्णमित्यर्थः। पूर्णत्वादि

निमित्तमुपादाय भूरादयः शब्दा भगवति प्रवर्त्तन्ते इत्याशयः। एवमविभागा- ज्जगत उत्पादनादभुवअन्तर्भाविण्यर्थस्य भवतेरेव क प्रत्ययरूपः।

इसी अभिप्राय से श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है-जिनके नखमण्डल से उत्पन्न गंगा की जगत्पिता ब्रह्मा पूजा करते हैं और वही गंगा भगवान् शिव को भी पवित्र करती हैं। ऐसे मुकुन्द के अतिरिक्त और कौन अन्यतम भगवत् पदार्थ है। इसी प्रकार ॐकार भी भगवद् वाचक ही है। ॐकार की व्युत्पत्ति रक्षण अर्थ में अवति धातु से होती है-''अवतेष्टिलोपश्च'' इस सूत्र से स्वरान्त लोप होने से सिद्ध होता है। ''ॐ इति ब्रह्म'' इत्यादि श्रुतियों में ॐकार को ब्रह्म वाचक कहा गया है। इसी प्रकार तीन व्याहृति का वर्ण त्रयात्मक ॐकार की व्याख्या प्राप्त होती है। उनमें भी भगवद् वाचकत्व ही है। भूः इति भूः धातु के बहुत्व अर्थ में भवति शब्द में क्वप् प्रत्यय करने पर भगवान् शब्द निष्पन्न होता है। यही अर्थ भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने भी कहा है उसके लिए ''परम्'' यह पद है। परम् पद का अर्थ पूर्ण है। पूर्णत्वादि निमित्तोपादान से भू आदि शब्द भगवदर्थ में प्रवृत्त होते हैं यह भाव है। इस प्रकार अविभाज्य जगत् के उत्पादन से भू का अन्तर्भावी अर्थ भवति का क प्रत्यय रूप है।

सुखरूपत्वात्स्व-स्वशब्दो हि सुखवाची ''यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरं अभिलाषोपनीतं च तत्पदं स्वः पदास्पदमि''त्यादौ प्रसिद्धः। एवं गायत्रीप्रतिपाद्योऽपि भगवानेव। तथाहि-जगत्प्रसवहेतुत्वात् सविता भगवानेव भरणगमनयोगेन भर्गशब्दार्थो भगवान्। एतेन गायत्र्यां यो भर्गो नो अस्माकं धियः प्रचोदयात् प्रेरयेत्तस्य सवितुर्देवस्य तद्वरेण्यं रूपं धीमहि चिन्तयाम इति। भर्गनामकः सविता प्रतिपाद्यो दृश्यते। तत्कथं भगवत्परत्वमित्यपास्तं ध्येयःसदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती त्यागमविरोधाच्च। एवं पुरुषसूक्तेऽपि भगवानेव प्रतिपाद्यः तथा च श्रुतिः-

सुखस्वरूप स्वशब्द सुखवाचक है। जैसा कि कहा गया है ''जो दुःख से अभेद्य है और जो बाद में भी दुःख से ग्रस्त नहीं है, और अभिलाषा पूर्ण करने वाला तत् पद है जो स्वपद् से अभिहित है।'' इसी प्रकार गायत्री का प्रतिपाद्य विषय भी भगवान ही हैं। जैसे जगत की उत्पत्ति के कारण होने

से सविता भगवान् ही हैं। भरण और गमन के योग से भर्ग शब्द का अर्थ भगवान् है। इसलिए गायत्री मन्त्र में जो कहा गया है ''यो भर्गो नो अस्माकं धियः प्रचोदयात्'' अर्थात् जो भर्ग है वह हमारी बुद्धि को प्रेरित करे। उस सविता देव के वरेण्य रूप का चिन्तन करें यह अर्थ है। कोई शंका करते हैं कि भर्ग नामक सविता तो सूर्य का नाम है तो यह गायत्री कैसे भगवान् परक हो सकती है इसका समाधान ऊपर किया गया है। सविता मण्डल के मध्यवर्ती ही ध्यान करने योग्य है इस प्रकार आगम का भी विरोध होने से गायत्री का प्रतिपाद्य भगवदर्थ ही है। इसी प्रकार पुरुषसूक्त का भी प्रतिपाद्य विषय भगवान् ही है। जैसे कि श्रुति कहती है--

स वायं पुरुषः सर्वासु पूर्षु परिशेते नानेन किंचन संवृत्तमिति आवृत्तमज्ञानमित्यर्थः सर्ववेदार्थत्वं भगवतः सिद्धम्। सर्वे वेदा यत्पदमामनन्तीत्यादिश्रुतेः।

वही यह पुरुष सब पुरों में शयन करता है, उससे कुछ भी छिपा नहीं है। सम्पूर्ण वेदों के अर्थ भगवान् में ही सिद्ध हैं। श्रुति प्रमाण दर्शाते हैं ''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'' अर्थात् सम्पूर्ण वेद जिनके चरणों का मनन करते हैं।

अथ विग्रहस्य नित्यत्वे श्रुतयः ''आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्, यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्। ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्ण पिंगलम्, विश्वतश्चक्षुः, सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि। तस्माद्विराडजायत, वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्, य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते, एको नारायणासीन्नब्रह्मा न च शंकरः, पुराकल्पेऽयमेव स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतिं शेते, यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते चेत्याद्याः।'' एवं चावतारविग्रहाः सर्वेऽपि नित्या एव। तथाहि ''अन्तरतः कूर्मपर्यन्त इत्यारभ्य पूर्वमेवाहमिहासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्व-मिति'' च श्रुतेः।

भगवद् विग्रह की नित्यता में श्रुति प्रमाण हैं। श्रुतियाँ कहती है- ''अन्धकार से परे जो आदित्य वर्ण है'', ''जब देखने वाला सुवर्णमय स्वरूप ऋत, सत्य, परब्रह्म, पिंगल कृष्ण को देखता है'', ''सब ओर आँख

वाला'', ''वह पुरुष अनन्त शिरवाला अनन्त नेत्रवाला और अनन्त चरण वाला है'', ''इनके चरण में सम्पूर्ण विश्व और भूत हैं इनके तीन चरण अमृतमय दिव्य लोक में है'', ''उस पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई'', ''मैं उस महान् पुरुष को जानता हूँ'', ''आदित्य मण्डल के भीतर तो हिरण्मय पुरुष दीखता है'', ''कल्प के आरम्भ में न ब्रह्मा थे न ही शंकर थे मात्र एक नारायण ही थे जो अपने कार्य को स्वयं में समाहित कर विकृति रहित सोते हैं'', ''जैसे मकडी स्वयं जाल रचती और निगलती है'' इत्यादि। इसी प्रकार सम्पूर्ण अवतार विग्रह भी नित्य हैं। इसमें श्रुति प्रमाण हैं-''अन्तरतः कूर्मपर्यन्तं पूर्वमेवाहमिहासम्'', ''तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्'' आदि। अर्थात् अन्तर से कूर्मपर्यन्त से आरम्भ करके ''मैं पहले से ही यहाँ था'', उस पुरुष का पुरुषत्व (अवतार विग्रह)।

किञ्च आनन्दरूपममृतं यद्विभाति आप्रणखात्सर्वमानन्दः। किमात्मको भगवान् ज्ञानात्मक ऐश्वर्य्यात्मक इत्यादि श्रुतेर्भेदाभावेऽपि अहिकुण्डलन्यायेन विग्रहवत्वोपपत्तिः। एवं ह्यसंख्याकानां श्रीगोपीनां रासमण्डले एकस्मिन्नेव क्षणे श्रीकृष्णस्यानेकदर्शनादेकस्यापि तस्यावतारिण अनेक रूपवत्तोपपत्तिः। यत्तु चन्द्रमण्डलगतामृतसङ्घातन्यायेन चेतनेतरानधिष्ठित भौतिक देह समवेतत्वमित्यवतारविग्रहेष्वयं विशेष इति स्वीकृत्य दध्यौ ब्रह्म परं विप्र प्रविश्य यमुनाजलमित्यारभ्य स तु दानपतिस्तदेत्यन्तं विष्णुपुराणं चोदाहृत्य इति मनुष्यदेहावच्छिताप्राकृतदेह परमेश्वरज्ञानमक्रूरस्य जातम् इदं च दिव्य रूपं कदाचिदक्रूरोद्धवादि परम भागवतैर्दृश्यते--

''आनन्दरूप अमृत जो प्रकाशित है, नख से लेकर सम्पूर्ण आनन्दमय है'' इत्यादि जो श्रुतिवचन हैं उनसे प्रश्न उठता है कि भगवान् ज्ञानात्मक हैं अथवा ऐश्वर्यात्मक? श्रुतियों में भेद के अभाव में भी अहिकुण्डल न्याय से विग्रहत्व की उपपत्ति है। इसी प्रकार रासण्डल में असंख्य गोपियों के साथ एक ही समय असंख्य श्रीकृष्ण विग्रह के दर्शन होने से उन अवतारी भगवान् के भी अनेक रूप सिद्ध हैं। चन्द्रमण्डलगत अमृत सङ्घात न्याय से अचेतन भौतिक देह भी चेतना समवेत होना अवतार विग्रह की विशेषता है। इस बात

की स्वीकारोक्ति विष्णु पुराण में ''दध्यौ ब्रह्म परं विप्र प्रविश्य यमुनाजलम्'' यहाँ से आरम्भ करके ''स तु दानपतिस्तदा'' यहाँ तक देखना चाहिए। यहाँ अक्रूरजी को रथारूढ भगवान् का तथा यमुनाजल में प्रविष्ट होने पर जल के भीतर भी भगवान् के दर्शन हुए जिसके कारण उनको भगवान् के अप्राकृत दिव्य विग्रह का ज्ञान हुआ। भगवान् के इस प्रकार के दिव्य स्वरूप के दर्शन कभी-कभी अक्रूर उद्धव आदि परम भागवत महानुभावों को होते हैं।

भौतिकं तु सर्वैरिति कस्यचित्प्रलापः। तदसत्, श्रीमद्भागवतादि विरोधात्। तथाहि-''अस्यापि देववपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य नतु भूतमयस्य कोऽपि। नेशे महित्ववसितुं मनसान्तरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूते''रिति बृहद्वैष्णवे च। यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः स सर्वस्माद्बहिः कार्यः श्रौतस्मार्तविधानतः। मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलस्नानमाचरेत् इति महाभारतेऽपि। न भूतसंघ-संस्थानो देहोऽस्य परमात्मन इति।

कोई कहते हैं कि भौतिक देह तो सबके द्वारा देखा जा सकता है, यह उनका प्रलापमात्र असत्य कथन है क्योंकि श्रीमद्भागवतादि पुराणों में इस कथन का विरोध प्राप्त होता है। जैसा कि श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में स्वयं ब्रह्मा कहते हैं-''हे देव, मुझ पर कृपा करके आपने जो यह वपु धारण किया है यह आप ही का इच्छामय स्वरूप है, यह भूतमय शरीर नहीं है। आपकी इस महिमा को ध्यान के द्वारा भी कोई नहीं जान सकता क्योंकि यह आपका सच्चिदानन्दमय स्वरूप है।'' वृहद् वैष्णव में इस प्रकार कहा गया है-''परमात्मा श्रीकृष्ण के देह को जो भौतिक देह समझता है उसे श्रौतस्मार्तादि कर्मों से बहिष्कृत कर देना चाहिए, ऐसे व्यक्ति का मुख देखने पर वैष्णवजनों को सचैल स्नान करना चाहिए।'' महाभारत में भी इस प्रकार वर्णन प्राप्त है--''परमात्मा का यह देह भूतादि तत्त्व का संघटन नहीं है।''

प्राकृतत्वस्योपाधित्वाच्च ''तमेतं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहम्, अतसीपुष्पसंकाशं नाभिस्थाने प्रतिष्ठितं, दुर्दर्शमतिगंभीरमजं श्यामविशारदम्'' इत्यादि श्रुतिभ्यश्च।

प्राकृतत्व के उपाधि के कारण उन सच्चिदानन्द विग्रह गोविन्द के प्रति श्रुतियाँ भी कहती हैं--''अतसी पुष्प के समान नाभिस्थान में प्रतिष्ठित दुर्दर्श, अतिगम्भीर, अजन्मा, श्याम, विशारद'' आदि।

अथ भगवल्लोका अपि चिद्रानन्दमया नित्या एव ''स भगवः क्व प्रतिष्ठित इति। स्वमहिम्नीति श्रुतेः। अतश्च श्रीमद्वृन्दावनादीनां चिदानन्दमयत्वेऽपि भगवत्क्रीडार्थं कुञ्जोपकुञ्ज सभासरः सरित्प्रासादवनोपवन-व्रापीकूपतडागादिगुल्मलतौषध्यादिरूपत्वं बोध्यम्। आहुश्च श्रीमत्पद्मा-चार्याः-''कुञ्जगुल्मादिरूपत्वं श्रीमद्वृन्दावनस्य च। कृष्ण क्रीडाकृते ज्ञेयं चिद्घनस्य विचित्रते''ति। चकाराद्गोलोकादीनामपि ग्रहणम्। वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदाम्बुज लब्धलक्ष्मीत्यादि श्रीभागवते च वैकुण्ठस्य त्वप्राकृतत्वमुक्तं परमागम चूडामणौ श्रीनारद पञ्चरात्रे जितन्ते स्तोत्रे च--

भगवान् के लोक भी चिदानन्दमय होने से नित्य हैं। श्रुति कहती है-''स भगवः क्व प्रतिष्ठितेति स्वमहिम्नीति'' वह भगवान् कहां रहते हैं, अपनी महिमा में प्रतिष्ठित हैं। इस कारण श्रीमद्वृन्दावनादि धाम चिदानन्दमय होने पर भी भगवान् के क्रीडा के लिए कुञ्ज, उपवन, सभा, सरोवर, नदी, महल, वन, वायु, तडाग, बावरी, कुआं, गुल्म, लता, औषधी आदि अनेक रूप होते हैं। श्रीपद्माचार्यजी ने कहा है-''कुञ्ज, गुल्मादि श्रीवृन्दावन के रूपों को श्रीकृष्ण की क्रीडा के लिए हैं ऐसा समझना चाहिए, यही चिद्घन की विचित्रता है।'' चकार के प्रयोग से गोलोकादि धामों का भी ग्रहण है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में इस प्रकार श्रीवृन्दावन की महिमा बताई गई है-''वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकी सुतपदाम्बुज लब्धलक्ष्मी।'' हे सखि, देवकीपुत्र के चरणकमल से लक्ष्मी प्राप्त कर वृन्दावन पृथ्वी की कीर्ति का विस्तार करता है। वैकुण्ठ के अप्राकृत स्वरूप का वर्णन परम आगमचूडामणि श्रीनारद पञ्चरात्र में जितंते स्तोत्र में इस प्रकार प्राप्त है-

''लोकं वैकुण्ठनामानं दिव्यं षाड्गुण्यसंयुतम्। अवैष्णवानाम

प्राप्यं गुणत्रयविवर्जितम्। नित्यसिद्धैः समाकीर्णं तन्मयैः पञ्चकालिकैः। सभाप्रासादसंयुक्तं वनैश्चोपवनैर्युतम्। वापीकूपतडागैश्च वृक्षखण्डैश्च मण्डितम्। अप्राकृतं सुरैर्वन्द्यमयुतार्कसमप्रभम्। प्रकृष्टसत्त्वसम्पूर्णं कदा द्रक्ष्यामि चक्षुषेति।'' अत्यार्कानलदीप्तं यत्स्थानं विष्णोर्महात्मन इत्यादि महाभारते च।

त्रिगुणरहित षडैश्वर्ययुक्त वैकुण्ठ नाम का दिव्य लोक अवैष्णवों को प्राप्त नहीं है। वहाँ पञ्चकालिक तन्मय सिद्धगण नित्य निवास करते हैं। वह दिव्य धाम बावडी, कुआं, तडाग, सभा, महल, वन, उपवन और दिव्य वृक्षों से सुशोभित है। उस अप्राकृत, देवताओं द्वारा वन्दित, हजारों सूर्य के समान प्रभायुक्त, प्रकृष्ट और सम्पूर्ण सत्व वैकुण्ठधाम का नेत्रों से कब दर्शन करूंगा। महाभारत में कहा गया है-भगवान् विष्णु का जो धाम है वह अग्नि और सूर्य से भी दीप्तिमान है। इसी प्रकार श्रुति भी उस अद्भुत परमधाम की महिमा बताती है--

''सहस्रस्थूणे वितते दृढे उग्रे यत्र देवानामधिदेवास्ते क्षयन्तमः (ये रजसः) पराके योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्। तद्विप्रासो विपण्य-वो जाग्रिवांसः समिन्धते यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्तिदेवास्तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय'' इति श्रुतौ च। ''सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदम्। तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसंभवम्। कर्णिकारं महद्यत्र षद्कोणं वज्रकीलकम्। षडंगषट्पदीस्थानप्रकृत्या पुरुषेण च। प्रेमानन्द महानन्दर-सेनावस्थितं हि यत्। ज्योतिरूपेण मनुना कामबीजेन सङ्गतम्। तत्किंजल्कतदंशानां तत्पत्राणि श्रियामपि। चतुरस्रं तत्परितःश्वेत-दीपाख्यमद्भुतम्।

''हजारों दृढ स्थूल में विस्तीर्ण देवता और उनके भी अधिदेव सभी क्षय होने वाले रजोगुणयुक्त हैं। उनसे परे जो परम व्योम में अध्यक्ष हैं, जिसको प्राप्त करने के लिए प्रबुद्ध विद्वज्जन अपनी विद्या से आलोकित करते हैं, जहाँ अनादि काल से साध्यदेव निवास करते हैं ऐसा वह विष्णु का परमधाम है जिसका मुक्त पुरुष सदैव दर्शन करते हैं।'' गोकुल का वर्णन

करते हैं-गोकुल नाम से प्रसिद्ध भगवान् का परमधाम सहस्र दल कमल के समान है। कर्णिकार वह परमधाम भगवान् शेष के अंश से समुत्पन्न है। यह षट्कोण और वज्रकीलकयुक्त है। षडंग षट्पदी वह स्थान प्रकृति पुरुष से युक्त है। जो प्रेमानन्द महानन्द रस से अवस्थित है और मन्त्र की ज्योति और कामबीज से सङ्गत है। वो ही ज्योति व बीज के केसरे और उनके अंश पत्ते और श्री हैं। उसके चारों ओर अद्भुत श्वेतद्वीप है--

चतुरस्रं चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्द्धाम चतुःकृतम्। चतुर्भिः पुरुषार्थैश्च चतुर्भि र्हेतुभिर्वृतम्। शूलैर्दशभिरानद्ध मूर्द्धाधोदिग्विदिक्ष्वपि। अष्टाभिर्निधि-भिर्जुष्टमष्टाभिः सिद्धिभिस्तथा। मनुरूपैश्च दशभिर्दिक्पालैः परितो वृतम्। श्यामैर्गौरैश्च रक्तैश्च शुक्लैश्च पार्षदर्षभैः। शोभितं शक्तिभिस्ताभिरद्भुताभिः समंततः।'' गोकुलाख्यमित्यनेन गोगोपीवासरूपत्वं गोलोकस्य विवक्षितम्।

चारों ओर से उस धाम को चार भाग करके चार मूर्ति विराजमान हैं, चार पुरुषार्थ और उसके चार साधन से युक्त हैं। वह दशों दिशाओं ऊर्द्ध अध दिशा विदिशा से शूल से बिंधा हुआ है। आठ निधि और आठ सिद्धि जिसकी सेवा करते हैं, मन्त्ररूप दश दिक्पाल से जो परिवेष्टित है, श्याम, गौर, रक्त और शुक्ल वर्ण के पार्षदों से सुशोभित और उनके अद्भुत शक्तियों से अलंकृत गोकुल धाम है। गौ और गोपी के निवास से गोलोक नाम विवक्षित हुआ।

गोकुलमित्याख्या रूढिर्यस्येति निरुक्तेः। रूढिर्योगमपहरतीति न्यायेन। तत्स्वरूपं तु तदनन्तांश संभवमिति अनन्तस्य श्रीबलरामस्यांशेन ज्योतिर्विभागरूपविशेषेण संभवः सदाविर्भावो यस्य तदित्यर्थः। निखिल-मन्त्रगणसेवितस्य श्रीमदष्टादशाक्षरगोपालमहामन्त्रराजस्य मुख्य-पीठ-मिदमेवेत्याह। कर्णिकारमित्यारभ्य कामबीजेन सङ्गतमित्यन्तेन अत्र प्रकृतिमन्त्रस्य स्वरूपं श्रीकृष्ण एव कारणरूपत्वात्पुरुषोऽपि तदधिष्ठातृ-देवतारूपः स एव दृश्यते चायंचतुररूपेण मन्त्रे मन्त्रकारणरूपत्वेन वर्णसमुदायरूपत्वेन अधिष्ठातृदेवतारूपत्वेन देवतारूपत्वेन चेति।

गोकुल का अर्थ ''रूढि योग का हरण करता है'' इस न्याय से किया गया। उसका स्वरूप तो अनन्त शेष से उत्पन्न हुआ। अनन्त अर्थात् श्रीबलराम के अंश द्वारा ज्योतिर्विभाग रूप विशेष से उत्पन्न सत् आविर्भाव यह आशय है। निखिल मन्त्रों द्वारा सेवित श्रीमदष्टादशाक्षर मन्त्रराज श्रीगोपाल मन्त्र का यह मुख्य पीठ है। इसका आशय पहले उद्धृत श्लोक ''तत्कर्णिकारम्'' से लेकर--''कामबीजेन सङ्गतम्'' तक बताया गया है। यहाँ प्रकृति का तात्पर्य मन्त्र का स्वरूप है और श्रीकृष्ण ही कारण रूप होने से पुरुष हैं। श्रीकृष्ण ही यहाँ अधिष्ठातृ देवता रूप दीखते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण ही मन्त्र में मन्त्र कारण रूप से, वर्ण समुदाय रूप से, अधिष्ठातृ देवता रूप से और देवता रूप से अर्थात् चार रूपों में प्रतिष्ठित हैं।

तथाहि श्रीगोपालतापनीयं श्रुतिः ''वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो जन्ये जन्ये पञ्चरूपो वभूव, कृष्णस्तथैको जगद्धितार्थं शब्देनासौ पञ्च पदो विभातीति।'' तथा हयशीर्षपञ्चरात्रेऽपि ''वाच्यत्वं वाचकत्वं च देव तन्मन्त्रयोरिह। अभेदेनोच्यते ब्रह्मंस्तत्त्वविद्भिर्विचारत इति।'' दुर्गाया अधिष्ठातृत्वं च शक्तिशक्तिमतोरभेदात् श्रीकृष्णस्यैव दुर्गानाम शक्तिः। अतो नेयं मायांशभूता दुर्गा। तथा च परमागमचूडामणौ नारद पञ्चरात्रे श्रुतिविद्या सम्वादे-''जानत्येका परं कान्तं सैव दुर्गा तदात्मिका। या परा परमाशक्तिर्महाविष्णुस्वरूपिणी। यस्या विज्ञानमात्रेण पराणां परमात्मनः मुहूतदिव देवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा।

इसी प्रकार श्रीगोपालतापिनी उपनिषद् में श्रुति कहती है-जैसे एक ही वायु भुवन में प्रविष्ट होकर प्रत्येक शरीर में पाँच रूपों वाला (पञ्चप्राण) हो जाता है उसी प्रकार एक ही कृष्ण जगत् के कल्याण के लिए शब्द के द्वारा पांच पद के रूप में प्रकाशित होते हैं। हयशीर्ष पञ्चरात्र में कहा गया है-मन्त्र तत्त्व को जानने वाले तत्त्ववेत्ता भलीभाँति विचार करते हुए दोनों मन्त्रों में वाच्यत्व और वाचकत्व देवता में अभेद बताते हैं। शक्ति और शक्तिमान में अभेद होने के कारण श्रीकृष्ण की ही शक्ति का नाम दुर्गा है इसलिए मन्त्र में दुर्गा का अधिष्ठातृत्व सिद्ध है। यह दुर्गा माया के अंश से उत्पन्न दुर्गा नहीं

है। जैसा कि आगमचूडामणि श्रीनारद पञ्चरात्र में श्रुति और विद्या के संवाद में कहा गया है-जो एक परमकान्त को जानती है वही तदात्मिका दुर्गा है, यह परमाशक्ति श्रीविष्णुस्वरूपिणी है, जिस पराशक्ति को जानने मात्र से क्षण में परमात्मा श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो जाती है अन्यथा नहीं।

एकेयं प्रेमसर्वस्वभावा श्रीगोकुलेश्वरी। अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वरः। भक्तिर्भजनसम्पत्तिर्भजते प्रकृतिः प्रियम्। ज्ञायते-ऽत्यंतदुःखेन सेयं प्रकृतिरात्मनः। दुर्गेति गीयते सद्भिरखण्डरसबल्लभा। अस्यावरिकाशक्तिर्महामायाखिलेश्वरी। यया मुग्धं जगत्सर्वं सर्वे देहाभि-मानिन इति।'' तत्पत्राणि श्रियामपीत्यत्र बहुवचनं पूजार्थं श्रियस्तत्प्रेयस्या गोपीरूपायाः श्रीराधिकायाः उपवनरूपाणि धामानीत्यर्थः। गोपीरूपत्वं चास्यमन्त्रस्य तन्नामलिंगत्वात्।

एक यही सम्पूर्ण प्रेमभाव वाली श्रीगोकुलेश्वरी है इसके द्वारा अखिलेश्वर आदिदेव का ज्ञान सुलभ है। भक्ति, भजन, सम्पत्ति, प्रकृति प्रिय को भजते हैं, यह आत्मा की प्रकृति अत्यन्त दुःख से जानी जाती है इसलिए इन अखण्ड रस बल्लभा को महात्मा जन दुर्गा इस नाम से पुकारते हैं। अखिलेश्वरी जो महामाया है वह दुर्गा की आवरणिका शक्ति है जिससे सम्पूर्ण देहाभिमानी जगत् मोहित हो रहा है।

गोकुल धाम के वर्णन में ''तत्पत्राणि श्रियामपि'' जो यह बहुवचनयुक्त वाक्य है वह पूजा के अर्थ में है। श्रियः अर्थात् श्रीकृष्ण की प्रेयसी गोपीरूप श्रीराधिकाजी के उपवन रूप धाम यह भाव है। गोपाल मन्त्रराज के नाम लिंग के कारण श्रीराधा का गोपीरूपत्व ग्रहण है।

अथ चतुरस्रेय्यमन्तर्मण्डलं श्रीवृन्दावनाख्यं ज्ञेयम्। तथा च बृहद्वामने श्रुतिवाक्यम् ''आनन्दरूपमिति यद्वदन्ति हि पुराविदः। तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हितः। श्रुत्वैतद्दर्शयामास स लोकं प्रकृतेः परम्। केवलानुभवानन्दमात्रमक्षरमध्यगम्। यत्र वृन्दावनं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः। मनोरमनिकुञ्जाढ्यं सर्वर्त्तुसुखसंयुत''मित्यादि उक्तेश्चायं

गोलोकः। श्रीमद्भागवते-"नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयं कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत्। ते चौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वर। अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः।

चतुःकोणयुक्त जो अन्तर्मण्डल बताया गया वह श्रीधाम वृन्दावन है ऐसा जानना चाहिए। इसके प्रमाण वामनपुराण के ये श्रुतिवाक्य हैं-श्रुतियां भगवान् से कहती हैं-हे भगवन् यदि आप हमको कल्याणकारी वर देना चाहते हैं तो प्राचीन ज्ञानीजन जिसको आनन्द रूप कहते हैं उसका दर्शन करा दीजिए। श्रुतियों की ऐसी जिज्ञासा सुनकर भगवान् ने उनको प्रकृति से परे परमधाम का दर्शन कराया। केवल आनन्द का अनुभव कराने वाले उस अक्षरधाम के मध्य में सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्षों से निर्मित निकुञ्ज युक्त और सम्पूर्ण ऋतुओं का सुख प्रदान करने वाले वृन्दावन नामक वन का श्रुतियों ने दर्शन किया।

श्रीमद्भागवत में गोलोक की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया गया है-एक दिन यमुनाजी में स्नान करते हुए नन्द बाबा को वरुणदेव भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की अभिलाषा से अपने वैभवयुक्त लोक में ले गए। नन्द बाबा को लाने के लिए भगवान् वरुणलोक पधारे। वरुण ने भगवान् की दीनभाव से वन्दना की और नन्द को मुक्त किया। श्रीकृष्ण के सम्मुख वैभव सम्पन्न वरुण की दीन दशा देख चकित नन्द ने गोपों से श्रीकृष्ण की महिमा बताई। गोपों ने श्रीकृष्ण को ईश्वर जान उत्सुकतावश उनसे अपनी सूक्ष्म गति अर्थात् परमधाम के दर्शन कराने की कामना की।

इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृग्स्वयम्। संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत्। जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः। उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन्। इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको विभुः। दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्। सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः। ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृता। ददृशुर्ब्रह्मणो

लोकं यत्राक्रूरोध्यगात्पुरा। नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः। कृष्णं च तत्र छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिता इति।"

सर्वान्तर्यामी भगवान् ने स्वजनों के संकल्प को जानकर उन पर कृपा करते हुए ऐसा विचार किया-इस लोक में अविद्या, काम और कर्म के द्वारा जीव ऊँची और नीची गति में घूमता रहता है वह अपनी गति को नहीं जानता। करुणासिन्धु भगवान् ने इस प्रकार चिन्तन कर अपने उस दिव्य परमधाम का जो अन्धकार से परे है गोपों को दर्शन कराया। वह धाम सत्य ज्ञान अनन्त रूप सनातन ब्रह्मज्योति है जिसको मुनिगण त्रिगुणरहित समाहित चित्त से देखते हैं। नन्दादिकों को पहले भगवान् ब्रह्महृद में ले गए जैसे ही ब्रह्महृद में डूबने लगे भगवान् ने उनका उद्धार किया। तब नन्दादिकों ने उस दिव्य ब्रह्मलोक का दर्शन किया जहाँ पहले अक्रूर जा चुके हैं। यहाँ अक्रूरजी का ब्रह्मलोक गमन श्रीशुकदेवजी द्वारा परीक्षित् को भागवत कथा सुनाने से पूर्व की घटना का उल्लेख है न कि नन्दादिकों द्वारा ब्रह्मलोक दर्शन से पूर्व। उस परमधाम के दर्शन प्राप्त कर गोपगण परम आनन्दित हुए। वहाँ श्रुतियों को स्वयं मूर्तिमान होकर भगवान् की स्तुति करते देख सभी विस्मित हुए।

स्वगतिं स्वधामं सूक्ष्मां दुर्ज्ञेयां अणुःपंथावितत पुराण इत्यादौ श्रुतेः। उपाधास्यदुपाधास्यति अस्मान्प्रापयिष्यतीत्यर्थः। इति निश्चितवन्त इति शेषः। अयं व्रजवासीजनः अविद्यादिभिरुच्चावचासु मनुष्यतिर्यगादिरूपासु भ्रमन् स्वरूपमजानन् स्वलोकं गोकुलं ब्रह्मणः परमबृहत्तमस्यैव लोक गोलोकाख्यं ददर्श। ननु लोकं वैकुण्ठनामानमित्यादि श्रीनारदपंचरात्रे जितंते स्तोत्रोक्त्या, सर्वे पंचोपनिषत्रूपा इतिपाद्मोक्त्या, पञ्चोपनिषत्प्रधानपञ्चाक्षरवाच्या प्राकृतद्रव्यानुविद्धवैकुण्ठान्तरस्यापि प्रतीतेः कोऽसौ ब्रह्महृदस्तत्राह यत्रेति।

श्रुति वचन दर्शाते हैं-वह सनातन परमगति परमधाम सूक्ष्म मार्गों से विस्तारित दुर्ज्ञेय है इत्यादि। ऊपर श्रीमद्भागवत से उद्धृत श्लोक में

"उपाधास्यत्" शब्द हमें प्राप्त करावेंगे इस निश्चितार्थ में प्रयुक्त है। ये व्रजवासीजन अविद्यादि के कारण ऊँचनीच योनि मनुष्य तिर्यगादि रूपों में भ्रमण करते हुए अपने गोकुल के रूप से अनभिज्ञ हैं यह उक्त "स्वरूप" शब्द का तात्पर्य है। उन्होंने परमबृहत्तम ब्रह्मलोक अर्थात् गोलोक को देखा। यहाँ शंका यह है कि श्रीनारद पञ्चरात्र में "वैकुण्ठनामानम्" इस प्रकार वर्णित और पद्मपुराण में पञ्चोपनिषद् प्रधान पञ्चाक्षर वाच्य अप्राकृत द्रव्यानुविद्ध वैकुण्ठ के वर्णन से भिन्न प्रतीत होने वाला यह ब्रह्महृद नाम का कौन सा लोक है? इसका समाधान "जहाँ अक्रूर गए" इस वाक्य से होता है।

तथा च गोपानामिति षष्ठीनिर्देशादयमेव गोलोकाख्य इति ज्ञायते। सर्वलोकोपरि विराजमानत्वं चास्य परमागमचूडामणौ श्रीनारदपञ्चरात्रे विजयाख्याने "तत्सर्वोपरि गोलोकस्तत्र लोके परः स्वयं, विहरेत्परमानन्दो गोविन्दोऽतुलनायक" इति। एवं सर्वोपरिविराजमानत्वेऽपि सर्वगत एवायं श्रीगोलोकः श्रीमन्नारायणवत्प्राकृताप्राकृतवस्तुव्यापकः। "न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुवृता यत्र सुरासुरार्चिता" इति द्वितीयस्कन्धवर्णितं कमलासनदृष्टवैकुण्ठवदत्रापि व्रजवासिभि दृष्ट इति भावः। अत्र भूमौ चायं श्रीगोलोकाख्यः वेदे प्रसिद्धः तथाहि-"यमुनातीरे गोकुलरम्ये विवसन्तं बाला नन्दन हे गावः क्षोभतं मां वर्जितनाथ मा कृषितोकं माकेशव निमाशोभिध्यात्मा परमात्मा मित्रस्तस्यैधातोग्निस्रष्टाखिलभोक्ता विष्णुर्वन्द्यो हे पङ्कजनेत्र मा त्वं हृषीकेशं मा पद्मोद्भवं मा वेद शरीर मा कृती मूर्त्ति मा विगताविगतीहे।" इति सामवेदे विष्णुस्तोत्रे।

और "गोपानाम्" यहाँ षष्ठी निर्दिष्ट होने से यही गोलोक है ऐसा ज्ञात होता है। गोलोक धाम सभी लोकों के ऊपर विराजमान है इस प्रकार आगमचूडामणि श्रीनारद पञ्चरात्र के विजयाख्यान में वर्णन प्राप्त है-"वह गोलोकधाम सम्पूर्ण लोकों के ऊपर विराजमान है, उस गोलोक में अतुलनायक परमानन्दी परमात्मा गोविन्द रमण करते हैं।" सबके ऊपर विराजमान होने पर भी जिस प्रकार भगवान् नारायण प्राकृत अप्राकृत वस्तुओं में व्याप्त हैं

उसी प्रकार श्रीगोलोक सर्वगत है। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में ब्रह्मा के द्वारा दृष्ट वैकुण्ठ के समान यहां भी व्रजवासियों ने देखा यह भाव है। इस पृथ्वी में भी गोलोकधाम का होना वेदों में प्रसिद्ध है। जैसे सामवेद के विष्णुस्तोत्र में-यमुना के तीर पर बसे हुए रमणीय गोकुल में निवास करने वाले और गोपाङ्गनाओं को आनन्दित करने वाले श्रीकृष्ण ने गौएँ और लक्ष्मी को प्रेरित किया है। श्रीकृष्ण का कोई स्वामी नहीं है इन्होंने ही लक्ष्मी के लिए वैभव और निवास स्थान का निर्माण किया है। यह केशव लक्ष्मी सहित है। यह श्रीकृष्ण नित्य लक्ष्मी से शोभित अध्यात्मतत्त्व रूप परमात्मा मित्रभाव से दीप्ति इन्धन वाले अग्नि का सर्जक है तथा समस्त का भोक्ता है एतादृश विष्णु वन्दनीय हैं। हे पंकजनेत्र, आप हृषीकेश हैं, लक्ष्मी सहित हैं, पद्म से उत्पन्न लक्ष्मी जो विगति और अविगति वाली मूर्ति स्वरूपा हैं ऐसी लक्ष्मी के साथ विद्यमान आपको हम जानते हैं।

"ता वां वास्तुन्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः अत्राहुस्तदुरगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरीति" ऋग्वेदे "या ते धामान्युश्मसीति विष्णोः परमंपदमवभाति भूरीति" यजुर्वेदे। एवं श्रीमदष्टादशाक्षरी गोपालविद्याया मुख्यपीठस्य श्रीगोलोकाख्यस्य श्रीचिदानन्दरूपत्वं सिद्धयाचिंत्यशक्तित्वेनोभयत्रापि नित्यत्वं सिद्धम्-

इसी प्रकार ऋग्वेद के विष्णुसूक्त में-हम उन निवासयोग्य स्थानों में जाने की इच्छा करते हैं, जहाँ विशाल सींगों वाली तथा गमनशील गायें हैं। यहाँ पर विशाल, गतिशील, बलवान् विष्णु का वह परमधाम अत्यधिक प्रकाशित होता है।

यजुर्वेद में भी ऋग्वेद के अनुसार विशाल सींगों वाली गौयुक्त परम पद का वर्णन प्राप्त है। श्रीमदष्टादशाक्षरी श्रीगोपाल मन्त्रराज में मुख्य पीठ का गोलोक नाम से चिदानन्द रूप सिद्ध है। अचिन्त्यशक्तियुक्त होने के कारण गोलोकधाम का परलोक और भूलोक में नित्यत्व सिद्ध है।

भोक्तृत्वं च-"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छती"त्यादौ प्रसिद्धमेव। तस्यैवाहुः पिप्पलम् स्वाद्वत्ति इत्यादौ श्रुतौ च, नचानश्नन्न्याभिचाकशीति श्रुतिविरोध इति वाच्यं तस्याः प्राणधारणभूताशननिषेध

विषयत्वात्। प्रीतितस्तु ''तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन'' इत्यादि वचनात् सत्यकामः सत्यसंकल्पो भगवान् शुभान् भोगान् भुनक्त्येवेति सर्वपरमास्तिकानां मतम्।

''जो भी भक्ति से मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल अर्पण करता है'' इत्यादि भगवद्वचनों से भगवान् का भोक्तृत्व प्रसिद्ध है। यदि ऐसा है तो ''द्वासुपर्णा सयुजा सखाया'' इत्यादि श्रुति में जीव को फल खाने वाला और परमात्मा को विना कुछ खाए प्रकाशित होने वाला कहने से विरोध उत्पन्न होगा, ऐसा नहीं है, क्योंकि श्रुति में प्राणधारण करने के लिए परमात्मा के भोजन का ही निषेध है। ''भक्ति से समर्पित अन्न खाता हूँ'' इत्यादि भगवद् वचन के अनुसार भक्तों पर अतिशय प्रेम होने से सत्यकाम सत्यसंकल्प भगवान् शुभ भोगों को भोगते ही हैं, ऐसा सभी परम आस्तिकजन मानते हैं।

तत्रोपास्यविशिष्टेष्टदेवता युगलस्वरूपमनुस्मरति अङ्गेत्यादिना-

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।५।।

अनन्तानवद्यकल्याणगुणगणस्य श्रीकृष्णस्य वामांगे श्रीवृषभानुनन्दनीं वयं स्मरेम इत्यन्वयः। कीदृशीं सकलेष्टकामदाम् अभीष्ट फलदां देवीं द्योतमानां सखीगणैः सेवनस्थानस्थिताभिः परमयूथेश्वरीभिः श्रीललितारंगदेव्यादिभिः सेवितां सर्वतः सेवमानाम् अतश्चाधिकतरविराजमानाम् अनुरूप सौभगामिति अनुरूप सौभगं यस्या ताम्। यच्चोक्तं श्रीभागवते-''तां रूपणीं श्रियमनन्य गतिं निरीक्ष्य, यालीलया धृततनोरनुरूपरूपाम्। प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठम् वक्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाष'' इति।

श्रीकृष्ण स्वरूप निरूपण कर उपास्यविशिष्ट देवता युगल स्वरूप को स्मरण करते हुए कहते हैं-

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।५।।

भगवान् श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में उनके ही समान गुण सम्पन्न, प्रसन्नता से विराजमान, हजारों सखियों से सेवित, सबकी इच्छा पूर्ण करने

वाली वृषभानुतनया देवी श्रीराधा का हम सदा स्मरण करें।

अनन्तानवद्य कल्याणगुणगण भगवान् श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा का हम स्मरण करें। श्रीराधा कैसी हैं इस पर कहते हैं- सबके अभीष्ट फल को प्रदान करने वाली, देवी अर्थात् दीप्तियुक्त, सेवा के अनुरूप अपने स्थानों पर स्थित ललिता रंगदेवी आदि यूथेश्वरियों के साथ सखीगणों के द्वारा सेवित, इसलिए सर्वातिशय रूप से विराजमान, श्रीकृष्ण के अनुरूप सौभग वाली जिनके लिए श्रीमद्भागवत में कहा गया है- '''भगवान् श्रीकृष्ण के अनुरूप रूपवाली अनन्यगति श्री (रुक्मिणी) को देखकर जिन्होंने लीला के द्वारा शरीर धारण किया है जो प्रेम से मुस्कुरा रही हैं जिनके घुंघराली अलकें कानों के कुण्डल और गले का स्वर्णहार अत्यन्त विलक्षण और दिव्य थे उनसे मुसकराते हुए भगवान् बोले।'

अत्रायमाशयः। अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेरिति श्रीभागवतोक्तेः। श्रियो नित्याविनाभावसम्बन्धः सर्वसम्मतः। तत्र श्रियो द्वे रूपे श्रीश्चलक्ष्मीश्चेति। तथाहि श्रुतिः ''श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्या वहोरात्रे पार्श्वे'' इति। ''गन्धद्वारां दुराधर्षांनित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियमिति।'' तत्र या श्रीः सा वृषभानोस्तनया या च लक्ष्मीः, सा रुक्मिण्यादिरूपा। ''देवत्वे देवदेहेयं मानुषत्वे च मानुषी। विष्णोर्देहानुरूपां च करोत्येवात्मनस्तनु''मिति वैष्णवोक्तेः। ''यां यां तनुमुपादत्ते भगवान् हरिरीश्वरः। तां तां श्रीरथावशेन भगवतोऽनपायिनीति'' श्रीनारदोक्तेश्च।

अनपायिनी भगवती श्री साक्षात् श्रीहरि की आत्मा है यह आशय है। श्री का भगवान् के साथ नित्य अविनाभाव सम्बन्ध सर्वसम्मत है। श्री के दो स्वरूप हैं, जैसे कि श्रुति कहती है-''श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्या'' आदि अर्थात् श्री और लक्ष्मी दोनों पत्नियां भगवान् के पार्श्व में नित्य विराजित हैं। श्री का आवाहन करने वाला मन्त्र है-''गन्ध के द्वारा दुराधर्ष सबको नित्य पुष्ट करने वाली, सम्पूर्ण भूतों की ईश्वरी देवी श्री का हम आवाहन करते हैं।'' इत्यादि प्रमाणों से समझना चाहिए कि जो श्री हैं वही वृषभानुतनया श्रीराधा हैं और जो लक्ष्मी हैं वही रूक्मिणी आदि रूप हैं। बृहद्वैष्णव में वर्णन

है--''जब भगवान् देव स्वरूप धारण करते हैं तब श्रीदेवी स्वरूप में प्रकट होती हैं, फिर भगवान् के मनुष्य देह धारण करने पर वह भी मानुषी स्वरूप में प्रकट रहती हैं, इस प्रकार भगवान् की अनपायिनी शक्ति भगवद्विग्रह के अनुरूप शरीर धारण करती हैं।'' श्रीनारद कहते हैं-''सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि जिस-जिस विग्रह को धारण करते हैं सर्वेश्वरी श्री भी उसी अनुरूप विग्रह धारण करती है।''

तत्र श्रीराधिकायाः सर्वस्वरूप श्रेष्ठेयंश्रुतिः प्रमाण्यात्। तथाहि **श्रुतिः-''राधया सहितो देवो माधवेन च राधिका। योऽनयोर्भेदं पश्यति स संसृतेर्मुक्तो न भवती''ति। ''वामांगे सहिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी''ति कृष्णोपनिषदि। परमागमचूडामणौ श्रीनारद पञ्चरात्रे च। ''हरेरर्द्धतनू राधा राधामन्मथसागरा। राधा पद्माख्या पद्मानामगाधा तत्र योगिनाम्।'' पुनस्तत्रैव। ''राधया सहितं कृष्णं यः पूजयति नित्यशः। भवेद्भक्तिर्भगवति मुक्तिस्तव करे स्थिते''ति। ''श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषः प्रभवा उभौ। भक्त्या सम्पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसम्पद''इति ब्रह्मवैवर्त्ते च। ''लक्ष्मीर्वाणी च तत्रैव जनिष्येते महामते। वृषभानोस्तु तनया राधा श्रीर्भविता किले''ति-**

इत्यादि श्रुतिस्मृति के प्रमाणों से श्रीराधा का स्वरूप सम्पूर्ण रूपों में श्रेष्ठ है। और भी श्रुतिस्मृतितन्त्रादिकों का प्रमाण दर्शाते हैं। जैसे-

राधाकृष्णोपनिषद् में-श्रीराधा से ही माधव हैं और माधव से ही श्रीराधा हैं। इन दोनों में जो भेद देखता है वह जन्म-मरण से कभी नहीं छूटता। वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा भगवान् के वामाङ्ग में विराजती हैं।

आगमचूडामणि श्रीनारदपञ्चरात्र में-भगवान् श्रीहरि के आधा शरीर श्रीराधा हैं जो अनन्त कामदेव के स्वरूप से भी श्रेष्ठ हैं। पद्मा नामवाली सम्पूर्ण देवियों की पद्मा स्वयं श्रीराधा हैं जिनका दर्शन योगियों को भी दुर्लभ है। जो भक्त श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण का नित्य पूजन करता है उसकी भक्ति भगवान् में स्थिर हो जाती है और मुक्ति तो ऐसे भगवज्जन के हाथ में निवास करती है।

श्रीमद्भागवत में--जिसको सम्पूर्ण की कामना हो उसे भक्तिपूर्वक श्रीसहित भगवान् विष्णु की पूजा नित्य करनी चाहिए, दोनों ही वर प्रदान

करने वाले और मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में--हे महामते, लक्ष्मी और वाणी भी वहां अवतरित होगी और स्वयं श्रीवृषभानु पुत्री श्रीराधा के रूप में प्रकट होंगी।

बृहद्गौतमीयतन्त्रे च। ''देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता, सर्वलक्ष्मीमयी स्वर्णकांतिसंमोहनी परा।'' ब्रह्मसंहितायां च-''यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः। अनयोरन्तरादर्शी संसारान्न विमुच्यत'' इति सम्मोहनीतंत्रे। तस्माज्ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधव रूपकमित्यादि। अतश्च श्रीराधिकाया एव श्रीरूपत्वेन श्रेष्ठत्वमिति सिद्धम्। इति श्रीमद्धरिव्यासदेवरचितसिद्धांतरत्नाञ्जलौ पूर्वार्द्धं समाप्तम्।

बृहद्गौतमीय तन्त्र में--सम्पूर्ण लक्ष्मीमयी स्वर्णकान्तियुक्त सबको सम्मोहित करने वाली भगवती श्रीराधा को कृष्णमयी कहा गया है।

ब्रह्मसंहिता में--जो श्रीकृष्ण हैं वही श्रीराधा हैं और जो श्रीराधा हैं वही श्रीकृष्ण हैं, इन दोनों में भिन्नता देखने वाला कभी संसार से मुक्त नहीं होता।

सम्मोहिनी तन्त्र में--उससे ज्योति दो रूपों में विभाजित हुई वही श्रीराधामाधव स्वरूप है। इत्यादि। इसलिए श्रीराधा का श्रीस्वरूप और उनकी श्रेष्ठता सिद्ध है।

इति श्रीमद्धरिव्यासदेवरचितसिद्धान्तरत्नाञ्जलौ पूर्वार्द्धं समाप्तम्।

सिद्धान्तरत्नाञ्जलिः

उत्तरार्द्ध

अथ विद्वद्भिर्निःशेषाविद्यानिवृत्तये युगलस्वरूपमेवोपास्यमित्याह उपासनीयमित्यादिना (मूल)

उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिल-तत्त्वसाक्षिणे।।६।।

अज्ञानतमोऽनुवृत्तेः प्रहाणये स्वरूपप्राप्तिप्रतिबन्धकस्य निवृत्तये।। ''मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता'' इत्यादि भगवदुक्तेः। सदा सर्वस्मिन्काले नितरामविच्छेदेन भगवत्स्वरूपमेव चिन्तनीयम्। यद्वा सदा उपासनीयमित्यनेन पञ्चकालोपासना आचार्य्यैरुक्ता। सा च पंञ्च-संस्कारसंस्कृतैः कर्त्तव्या।। पञ्चसंस्कारानग्रे निरूपयिष्यामः।। काल-पञ्चकञ्च अभिगमनकालः।। उपादानकालः। पूजाकालः।। स्वाध्याय-कालः।। योगकालश्च।। इति यथाकालव्यवहितोपासनं निबन्धान्तरे द्रष्टव्यम्।। अत्रोपास्यस्वरूपचिन्तने त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयति।। श्रुतं ह्येवमेव भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति।। सोऽहं भगवः शोचामि तं मां भगवाञ्छोकस्य पारं तारयतु तस्मै मुदितकषा-याय तमसः पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमार इत्यादिश्रुतिः, प्रमाणयति-सनन्दनाद्यैरिति ''अखिलतत्त्वसाक्षिणे तत्त्वज्ञानवते श्रीनारदाय भगवा-न्सनत्कुमारः ज्ञानमुपदिष्टवानित्यर्थः। ज्ञानं चोपासनात्मकम् उपास्यं च सगुणब्रह्म इत्युक्तमधस्तात्। ननु तत्त्वद्रष्ट्रे नारदाय ज्ञानोपदेशो व्यर्थ एव इति चेत्, उच्यते।। यथा तत्त्वज्ञातारमपि वेदव्यासं श्रीनारद उपदिष्टवान् तथैव सनत्कुमारोऽपि इति सार्थक एवायमुपदेशः। अतएव श्रीगीतासूक्तम् ''उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः'' इति।। ननु अविद्याया निर्विशेषचिन्मात्र-ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानेन निवृत्तिर्युक्ता।। तथाहि श्रुतयः, ''न पुनर्मृत्यवे तदेकं पश्यति'', न पश्यो मृत्युं पश्यति, यदाह्येवैष

एतस्मिन्नदृश्ये नामये निरुक्ते निलयने भयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सोऽभयं गतो भवति, भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति, तमेव विदित्वाति-मृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय इत्याद्याः। न च सकलभेदनिवृत्तिः प्रत्यक्षविरुद्धा कथमिव शास्त्रजन्यज्ञानेन क्रियत इति वाच्यं, रज्जुरेषा न सर्प इति ज्ञानेन प्रत्यक्षविरुद्धायाः सर्पनिवृत्तेदृष्टत्वात्।।

मङ्गलवाचक अथ शब्द से ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध का प्रारम्भ करते हैं। अविद्या की निःशेष निवृत्ति के लिए विद्वानों के द्वारा युगलस्वरूप ही उपास्य हैं ऐसा उपदेश प्रदान करते हुए निम्न श्लोक में श्रीमदाद्याचार्यचरण कहते हैं-

उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे।।

समस्त तत्त्व के साक्षी देवर्षि श्रीनारदजी को सनन्दनादि महर्षियों ने जिस प्रकार उपदेश किया उसी प्रकार सभी जनों को अज्ञानान्धकार के कारण जन्म-मृत्यु रूप संसार चक्र से मुक्त होने के लिए निरन्तर युगलस्वरूप भगवान् श्रीराधाकृष्ण की उपासना करनी चाहिए। अज्ञानरूपी अन्धकार की अनुवृत्ति को दूर करने के लिए अर्थात् स्वरूप प्राप्ति में जो प्रतिबन्धक तत्त्व हैं उनको हटाने के लिए भगवान् की उपासना करनी चाहिए। जैसे कि श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं भगवान् के वचन हैं-''मेरे ही शरण में जो आते हैं वे ही इस माया को पार करते हैं ऐसे शरणागत भक्तों पर कृपा करके मैं आत्मभाव में स्थित होकर प्रकाशमान ज्ञान रूपी दीपक से उनके अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करता हूँ।'' श्लोक में प्रयुक्त सदा शब्द का अर्थ है सभी समय और नितरां का अर्थ है अविच्छिन्न अर्थात् सभी समय अविच्छिन्न भगवत्स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए यह अर्थ हुआ। पूर्वाचार्यों ने 'सदा उपासनीयम्' इसका आशय पञ्चकालिक उपासना बताया है। पञ्चकालिक उपासना पञ्च संस्कार सहित भली भाँति करनी चाहिए।

पञ्च संस्कारों की चर्चा आगे करेंगे। कालपञ्चक हैं-१-अभिगमन काल २-उपादानकाल ३-पूजाकाल ४-स्वाध्यायकाल और ५-योगकाल। सूर्योदयपूर्व देवस्थान की सफाई आदि कर्म अभिगमनकाल की उपासना

कही गई है। गन्धपुष्पादि पूजा सामग्री की तैयारी करना उपादान काल की उपासना है। इष्टदेव का पूजन पूजाकाल की तथा भगवान् के लीला चरित्रों का मनन, मन्त्र जप आदि स्वाध्याय काल की उपासना है। इष्टदेव से आत्मा की ऐक्यभावना योगकाल की उपासना कही गई है। पञ्चकाल उपासना की विस्तृत व्याख्या अन्य ग्रन्थों में देखें। यहाँ उपास्य के स्वरूप का चिन्तन करते हैं। तत्त्वज्ञानी देवर्षि श्रीनारदजी को भगवान् श्रीसनकादिक ने ज्ञान का उपदेश किया। इसका श्रुति प्रमाण है-श्रीनारदजी छान्दोग्य उपनिषद् के भूमाविद्या प्रकरण में भगवान् सनकादिक से निवेदन करते हैं-आप ही हमारे पिता हो जो हमें अविद्या से पार ले जाते हैं। हमने आपके सदृश आचार्यों से सुना है कि आत्मवित् शोक से पार तरता है। हे भगवन्, मैं शोकयुक्त हूँ, मुझे इस शोक से पार तारिये। ऐसे मुदितकषाय श्रीनारदजी को भगवान् सनत्कुमार अन्धकार से परे दिखाते हैं।

ज्ञान उपासनात्मक है और उपास्य सगुण ब्रह्म है जिसकी व्याख्या पहले की गई है। यहाँ शंका यह है कि जो स्वयं तत्त्वद्रष्टा हैं ऐसे देवर्षि श्रीनारदजी को ज्ञान का उपदेश क्या व्यर्थ नहीं है? नहीं, जैसे तत्त्वज्ञाता श्रीवेदव्यासजी को श्रीनारदजी ने उपदेश दिया वैसे ही श्रीसनकादिकों ने श्रीनारदजी को उपदेश दिया जो सार्थक है। अतएव श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने कहा-तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन तुमको ज्ञान का उपदेश देंगे। कोई कहते हैं कि निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्म से एकत्व अर्थात् अद्वैत का ज्ञान हो जाय तो अविद्या की निवृत्ति हो जाती है, फिर उपासना किसलिए? श्रुतियों में भी कहा गया है-''जो एक को देखता है वह फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता, एक को देखने वाला मृत्यु को नहीं देखता, जिस समय यह अदृश्य, रागादि रहित, वाणी से परे, निराधार अभय की प्रतिष्ठा ब्रह्म में जानता है तब वह (जीव) अभय प्राप्त करता है।'' ''सम्पूर्ण जगत् से परे उस ब्रह्म को देखने से इसके मोह टूट जाते हैं, सब संशय नष्ट हो जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाते हैं।'' ''ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही होता है।'' ''उसको जानकर ही मृत्यु को उल्लंघन करता है, इसके अतिरिक्त मोक्ष का अन्य कोई मार्ग नहीं है।'' इत्यादि। और भी कहते हैं कि सम्पूर्ण भेद की निवृत्ति प्रत्यक्ष के विरुद्ध

हैं फिर शास्त्रजन्य ज्ञान से निवृत्ति कैसे सम्भव है? इन शंकाओं के समाधान में कहते हैं कि यह सर्प नहीं रस्सी है इस प्रकार के ज्ञान से प्रत्यक्ष में विरुद्ध सर्प की निवृत्ति देखी जाती है।

एवञ्च दोषमूलत्वेनान्यथासिद्धं सम्भावनया च सकलभेदावलम्बि-प्रत्यक्षस्य शास्त्रबाध्यत्वम्। दोषश्चानादिभेदवासनया वेतिचेन्न अन्योन्याश्रयात् शास्त्रस्यापि दोषमूलत्वाच्च।। नच दोषमूलत्वेऽपि शास्त्रस्य प्रत्यक्षावगत-सकलभेदनिरसनज्ञानहेतुत्वेन परत्वात्प्रत्यक्षस्य बाधकमितिवाच्यं दोषमूलत्वे ज्ञाते सति परत्वस्याऽकिञ्चित्करत्वाद्रज्जुसर्पज्ञाननिमित्तभये सति भ्रान्तोऽयमितिपरिज्ञानेन केनचिन्नायंसर्पो मा भैषीरित्युक्तोऽपि भया-निवृत्तिदर्शनात्। ननु शास्त्रप्रत्यक्षयोर्द्वयोरपि अविद्यामूलत्वेऽपि प्रत्यक्षस्य विषयस्य शास्त्रेण बाधो दृश्यते।। शास्त्रविषयस्य सदद्वितीयब्रह्मणः पश्चात्तन बाधादर्शनेन निर्विशेषब्रह्मैव परमार्थ इति चेन्न अबाधितस्यापि दोषमूलस्यापारमार्थ्यनिश्चयात्। सन्ति चात्र प्रयोगाः ''विवादाध्यासितं ब्रह्म मिथ्या अविद्यावदुत्पन्नज्ञानविषयत्वात् प्रपञ्चवत्'' ब्रह्म-मिथ्या ज्ञानविषयत्वात् प्रपञ्चवत्' ब्रह्ममिथ्या असत्यहेतुजन्यज्ञानविषयत्वात्प्रप-ञ्चवत्' 'ननु स्वाप्नस्य हस्त्यादिज्ञानस्यासत्यस्य परमार्थशुभाशुभप्रतिपत्ति-हेतुत्ववदविद्यामूलत्वेनासत्यस्यापि शास्त्रस्य परमार्थभूतब्रह्मविषयप्रति-पत्तिहेतुभावो न विरुद्ध इति चेन्न स्वप्नज्ञानस्यासत्यत्वाभावात्।।

इस प्रकार दोषमूल के द्वारा अन्यथासिद्ध है। सम्भावना से सम्पूर्ण भेदों का अवलम्बी प्रत्यक्ष शास्त्र से बाधित देखा गया है। दोष भी अनादि भेद की वासना ही है इस प्रकार नहीं कह सकते क्योंकि अन्योन्याश्रय के कारण शास्त्र को भी दोषमूल देखा जाता है। दोषमूल होने पर भी शास्त्र का प्रत्यक्ष ज्ञान भेद निवारक ज्ञान का कारण होने से परोक्ष में शास्त्र प्रत्यक्ष का बाधक है ऐसा भी नहीं कह सकते। दोषमूल का ज्ञान हो जाने पर परोक्ष में बाधा नहीं है। जैसे रस्सी में सर्प के भ्रम-ज्ञान से किसी को भयभीत जानकर कोई कहे कि यह सर्प नहीं रस्सी है फिर भी भय का निराकरण नहीं देखा जाता। और भी शंका करते हैं कि शास्त्र और प्रत्यक्ष दोनों का मूल अविद्या होने से प्रत्यक्ष विषयों की शास्त्र से बाधा देखी जाती है। शास्त्र का विषय

तो सत् और अद्वितीय ब्रह्म है उसकी बाद में अबाधा देखते हुए निर्विशेष ब्रह्म ही परमार्थ है, ऐसा नहीं कह सकते। अबाधित होने पर भी दोषमूल के कारण परमार्थ अनिश्चित है। इस प्रकरण के कुछ प्रयोग हैं जैसे-''विवाद से अध्यासित ब्रह्म मिथ्या है क्योंकि वह अविद्या के समान ज्ञान से उत्पन्न हुआ इसलिए प्रपञ्च के समान है।'' ''ब्रह्म मिथ्या है क्योंकि वह ज्ञान का विषय होने से प्रपञ्च के समान है।'' ''ब्रह्म मिथ्या है क्योंकि वह असत्यहेतुजन्य ज्ञान का विषय है इसलिए प्रपञ्च के समान है।'' इस पर ब्रह्मवादी कहते हैं कि स्वप्न में देखा गया हाथी का ज्ञान झूठा तो है परन्तु परमार्थ में भले बुरे की प्रतिपत्ति हो जाती है वैसे ही शास्त्र अविद्यामूल और असत्य भी है परन्तु परमार्थभूत ब्रह्म के विषय में कारण हो तो भावविरुद्ध नहीं है। सिद्धान्त पक्ष यह है कि स्वप्न के ज्ञान को झूठा नहीं कह सकते।

तत्तद्विषयाणामेव मिथ्यात्वं तेषामेव हि बाधो दृश्यते न ज्ञानस्य नहि 'मया स्वप्ने वेलायां अनुभूतं ज्ञानमिह न विद्यते' इति कस्यचिदपि प्रत्ययो जायते। दर्शनं तु विद्यते अर्था न संतीति बाधकप्रत्ययः। मायाविनो मंत्रौषधादिप्रभवं मायामयं ज्ञानं सत्यमेव प्रकृतेर्भयस्य च हेतुस्तत्रापि ज्ञानस्याबाधितत्वाद्विषयेन्द्रियादिदोषजन्यं रज्ज्वादौ सर्पादि विज्ञानं सर्पभयादिहेतुः सत्यैवादंष्टेऽपि स्वात्मनि सर्पसन्निधानात् दंष्टबुद्धिः सत्यैव शंका विषबुद्धिः मरणहेतुभूता।

उन विषयों में बाधा देखी जाती है जो मिथ्या हैं ज्ञान में कोई बाधा नहीं है। इसलिए ''मैंने स्वप्न में जिस ज्ञान को अनुभव किया वह अब नहीं है'' इस प्रकार सबकी प्रतीति है। दर्शन तो है परन्तु विषय नहीं हैं उन्हीं की बाधा है। मायावादियों के मंत्र औषधि आदि के मायामय प्रयोग का ज्ञान सत्य ही है, क्योंकि इससे सबको भय होता है। वहाँ भी ज्ञान अबाधित है। परन्तु वह ज्ञान विषयेन्द्रियों के दोष से उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार रस्सी आदि में सर्पादि का विज्ञान भय का कारण होने से सत्य ही है क्योंकि सर्प के द्वारा नहीं डसे जाने पर भी मन में सर्प की भावना होने के कारण ''सर्प ने डस लिया है'' इस प्रकार शंकात्मक विषबुद्धि मरण का कारण बन जाती है।

वस्तुभूत एव जलादौ मुखादिप्रतिभासो वस्तुभूतमुखगतविशेष-निश्चयहेतुस्तेषां सम्वेदनानामुत्पत्तिमत्त्वादर्थक्रियाकारित्वात्सत्यत्वम-वसीयते। ननु हस्त्यादीनामभावे कथं तद्बुद्धयः सत्या भवन्तीतिचेत् मैवं बुद्धीनां सालम्बनत्वमात्रनियमात्। अर्थस्य प्रतिभासमानत्वमेव ह्यालम्ब-नत्वेऽपेक्षितम्। प्रतिभासमानता चास्त्येव दोषवशात्। स तु बाधितो ऽसत्य इत्यवधीयते।। अबाधिता हि बुद्धिः सत्यैवेत्युक्तम्। रेखायां वर्णप्रतिपत्तावपि नासत्यात्सत्यबुद्धि रेखायाः सत्यत्वात्।। ननु वर्णात्मना प्रतिपन्ना रेखा वर्णबुद्धिहेतुर्वर्णात्मता त्वसत्या नैवं वर्णात्मताया असत्यायाः उपायत्वायोगात्। असतो निरूपाख्यस्य ह्युपायत्वं न दृष्टमनुपपन्नं च।।

जलादि में मुख का प्रतिबिम्ब सत्य नहीं है परन्तु प्रतिबिम्ब वस्तुगत मुख के निश्चय का कारण तो है इसलिए प्रतिबिम्ब के द्वारा संवेदनात्मक ज्ञान उत्पन्न होने से अर्थ और क्रिया से सत्य का निश्चय किया जाता है। इस प्रतिबिम्बवाद से स्वप्नजन्य ज्ञान तो असत्य हो जायेगा। क्योंकि वहाँ हाथी देखा गया परन्तु उसका अभाव है, ऐसा नहीं है। बुद्धि का आलम्बन मात्र नियम है। इस नियम से आलम्बन में अर्थ के आभास के कारण अपेक्षित अर्थ का आभास तो है ही। वह आभास मात्र दोषयुक्त होने से बाधित है इसलिए असत्य निश्चित होता है। परन्तु अबाधित होने से बुद्धि सत्य ही है ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार रेखा में वर्ण की प्रतिपत्ति होने पर भी असत्य से सत्यबुद्धि नहीं है क्योंकि रेखा तो सत्य है। इसमें शंका करते हैं कि रेखा वर्णात्मकता को प्राप्त हुई इसलिए वह वर्णबुद्धि का कारण है इसलिए वर्णात्मकता तो असत्य है? नहीं, क्योंकि वर्णात्मकता की असत्यता प्रमाणित करना असम्भव है। असत् है और जिसका कोई रूप नहीं है और न सुना गया। उसका उपाय न तो देखा गया।

अथ तस्यां वर्णबुद्धिरुपायत्वमेवं तर्ह्यसत्यात्सद्बुद्धिर्न स्याद् बुद्धेः सत्यत्वादेवोपायोपेययोरैक्यप्रसङ्गश्च। उभयोर्वर्णबुद्धित्वाविशेषाद्रेखायां विद्यमानवर्णात्मनोपायत्वे चैकस्यामेव रेखायामविद्यमानसर्ववर्णात्मकत्व-स्य सुलभत्वादेकरेखादर्शनात्सर्ववर्णप्रतिपत्तिः स्यात्।।

रेखा में वर्णबुद्धि का उपाय है। असत्य से सद्बुद्धि नहीं होती।

बुद्धि की सत्यता से ही उपाय और उपेय में एकता का प्रसङ्ग है। दोनों में वर्णबुद्धि की अविशेषता होने से यद्यपि रेखा में अविद्यमान वर्णात्मक उपायता में एक ही रेखा में सम्पूर्ण वर्णात्मकता अविद्यमान है। सहजता से एक रेखा के दर्शन से सम्पूर्ण वर्णों की प्रतिपत्ति हो जाए।

ननु पिण्डविशेष देवतादिशब्दसंकेतवच्चक्षुर्ग्राह्यरेखाविशेषे श्रोत्र ग्राह्यवर्णविशेषसंकेतवशाद्रेखाविशेषो वर्णविशेषबुद्धिहेतुरितिचेन्न।। एवं सति सत्यादेव सत्यप्रतिपत्तिः।। रेखायाः संकेतस्य च सत्यत्वाद्रे खागवयादपि सत्यगवयबुद्धिः सादृश्यनिबन्धना, सादृश्यं च सत्यमेव। नचैकरूपस्य शब्दस्य नादविशेषेणार्थविशेषभेदबुद्धिहेतुत्वेऽप्यसत्यात्सत्य-प्रतिपत्तिः।।

शंका करते है कि पिण्ड विशेष में देवता आदि शब्द का संकेत करते हैं वह नेत्र से ग्राह्य रेखा विशेष में श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य वर्ण विशेष का संकेत प्राप्त करने से रेखा विशेष वर्ण विशेष का कारण है ऐसा नहीं है। यदि ऐसा हो तो सत्य से सत्य की प्रतिपत्ति हो जाए। रेखा संकेत के सत्यत्व से गवय शब्द में सत्य गवय बुद्धि हो जाए अर्थात् गवय रेखाओं में भी गति वृद्धि होना चाहिये। सादृश्य के सम्बन्ध से सादृश्य सत्य ही है। एकरूप वाले शब्द के नाद विशेष से भेद बुद्धि उत्पन्न होने से असत्य से सत्य की प्रतिपत्ति नहीं है।

नानानादाभिव्यक्तस्यैव शब्दस्य तत्तन्नादाभिव्यङ्ग्यस्वरूपेणार्थ-विशेषैः सह सम्बन्धग्रहणवशादर्थभेदव्युत्पत्तिहेतुत्वाच्छब्दस्यैकरूपत्वमपि न साधीयः गकारादेर्बोधकस्यैव श्रोत्रग्राह्यत्वेन शब्दत्वात्।।

नाना प्रकार के नाद से जो शब्द प्रकट होते हैं उन-उन नाद के स्वरूप से प्रकाशित करके अर्थ विशेष सहित सम्बन्ध का ग्रहण होता है जिससे अर्थ के भेद जाने जाते हैं इसलिए शब्द ही अर्थ के भेद की व्युत्पत्ति का कारण है। इससे शब्द का एकरूपत्व सिद्ध नहीं होता क्योंकि गकारादि के अर्थ का बोधन कान के द्वारा ग्राह्य होने से शब्द है।

अतोऽसत्याच्छास्त्रात्सत्यब्रह्मविषयप्रतिपत्तिर्नोपपद्यते।। नच वाच्यं न शास्त्रस्य गगनकुसुमवदसत्यत्वं प्रागद्वैतज्ञानात्सद्बुद्धिबोधत्त्वादुत्पन्ने

तत्त्वज्ञाने ह्यसत्यत्वं शास्त्रस्येति न तदा शास्त्रं निरस्तनिखिलभेदचिन्मात्र-ब्रह्मज्ञानोपायः। यदोपाय तदास्त्येव शास्त्रजन्यज्ञानम्। तस्य मिथ्यात्वेन तद्विषयस्यापि ब्रह्मणो मिथ्यात्वं यथा धूमबुद्ध्या गृहीतवाष्पजन्याग्निज्ञा-नस्य मिथ्यात्वेन तद्विषयस्याग्नेरपि मिथ्यात्वं पश्चात्तनबाधादर्शनं चासिद्धं शून्यमेव तत्त्वमितिवाक्येन तस्यापि बाधदर्शनात्तत्तु भ्रांतिमूलमितिचेदपितु भ्रांतिमूलमिति त्वयैवोक्तं पाश्चात्यबाधादर्शनं तु तस्यैवेति दिक्। एवं हि शास्त्रस्य सत्यत्वे सिद्धे सर्वविज्ञानमपि यथार्थमेवेत्याह सर्वमित्यादिना।

इस कारण असत्य के स्वरूप वाले शास्त्र से सत्य ब्रह्म की प्राप्ति नहीं है। न तो ऐसा कहना चाहिए कि शास्त्र गगन कुसुम के समान असत्य है क्योंकि अद्वैत के ज्ञान से पहले सद्बुद्धि के बोध से उत्पन्न तत्त्वज्ञान में शास्त्र की असत्यता नहीं है। और न ही शास्त्र जिनके समस्त भेद समाप्त हो गए हैं ऐसे चिन्मात्र ब्रह्म के ज्ञान का उपाय हो सकते हैं। जब उपाय है तो शास्त्रजन्य ज्ञान है। उसकी असत्यता से उसके विषय ब्रह्म में भी असत्यता व्याप्त हो जायेगी जैसे कोहरे को देखकर उसमें धूम (धुँआ) बुद्धि हो जाने से जिस प्रकार धूम का ज्ञान असत्य है उसी प्रकार उसका प्रतिपाद्य विषय अग्नि भी मिथ्या है बाद में बाधा दर्शन भी असिद्ध हैं। उसमें शून्य ही तत्त्व है इस वाक्य से उसके भी बाधा दर्शन से वह भ्रान्ति मूल है ऐसा कहना चाहिए अपितु भ्रान्ति मूल अद्वैतवादियों ने ही कहा है बाद में बाधा दर्शन भ्रान्ति मूल का ही सिद्ध होता है। इस प्रकार शास्त्र की सत्यता सिद्धि में सम्पूर्ण विज्ञान यथार्थ है-इस प्रकार आगे के श्लोक में वर्णन करते हैं।

**सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता।।७।।**

निखिलस्य वस्तुनः चेतनाचेतनस्य ब्रह्मात्मकत्वाद्ब्रह्मणो जातत्त्वात्तदात्मकत्वं श्रुतिस्मृतिसिद्धम् अतः सर्वं विज्ञानं यथार्थमेवेत्यन्वयः।

त्रिरूपतेति तासामेकैकं त्रिवृतं त्रिवृतं करवाणीति श्रुतिः। त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वादिति सूत्रं आभ्यामग्न्यादौ त्रिरूपता साधितेत्यर्थः। यदग्नेः रोहितं रूपं तेजस्तद्रूपमित्यादि श्रुत्यन्तराच्च।। किञ्च द्विचन्द्रज्ञानादौ अंगुल्यवष्टम्भातिमरादिभिर्नयनतेजोभेदेन सामग्रीभेदात्। द्विचन्द्राविति-

प्रतीतिः जपाकुसुमसमीपवर्त्तिस्फटिकमणिरपि तत्प्रभाभिभूतया स्वप्रभया रक्त इति गृह्यते।

सम्पूर्ण चेतनाऽचेतन वस्तु ब्रह्मात्मकत्व अर्थात् ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण तदात्मक है। यह बात श्रुति-स्मृतियों से सिद्ध है इसलिए सम्पूर्ण विज्ञान यथार्थ ही है ऐसा श्लोकार्थ है। त्रिरूपताः-इस शब्द की व्याख्या करते हैं-''तासामेकैकं त्रिवृतंत्रिवृतं करवाणि'' अर्थात् उन एक-एक का तीन-तीन विभाजन किया इस श्रुति के द्वारा तथा ''त्र्यात्मकत्त्वात्तुभूयस्त्वात्'' इस सूत्र के अनुसार अग्नि आदि में त्रिरूपता सिद्ध है यह तात्पर्य है। इसमें अन्य श्रुति प्रमाण भी दर्शाते हैं जो अग्नि में लालिमा और प्रकाश है वही तेज का रूप है इत्यादि अन्यान्य श्रुति प्रमाण भी दिया जा सकता है। कोई कहते हैं-दो चन्द्रमा के ज्ञान आदि में अंगुलियों के अवरोध से उत्पन्न अन्धकार के द्वारा नेत्रों के तेजोभेद से वस्तु में भेद उत्पन्न हो जाता है इसीलिए दो चन्द्रमा की प्रतीति होती है। इसी प्रकार जपा कुसुम के समीप स्फटिक मणि को रख दिया जाए तो उसकी प्रभा से यह भी लाल दिखता है।

पीतः शंख इत्यादौ तु नयनवर्त्ति पित्तद्रव्यसंभिन्ना नयनरश्मयः शंखादिभिः संयुज्यन्ते तत्र पित्तद्रव्यगतपीतिमाभिभूतः।। शंखगतशुक्लिमा न गृह्यते। अतः सुवर्णानुलिप्तशंख इति प्रतीयते। अलातचक्रेऽप्यलातस्य द्रुततरगमनेन सर्वदिशसंयोगादन्तरालग्रहणम्।। अतस्तदपि यथार्थम् एवं मरुमरीचिकाजलादावपि बोध्यम्।

पीला शंख इत्यादि में तो नेत्रों में कमलपित्त आदि विकार से अथवा पीले द्रव्य से नेत्रों की किरण युक्त होने से शुभ्र शंख भी पीत द्रव्य के अनुसार पीत ही दिखाई देता है इस अवस्था में शंख गत शुभ्रता को ग्रहण नहीं किया जाता। अतः स्वर्ण से मढे हुए शंख की प्रतीति होती है। इसी प्रकार लकड़ी के दोनों छोरों पर मशाल जलाकर जोर से घुमाने पर अग्नि रेखा दिखाई देती है। इसलिए वह भी ब्रह्म को देखने वाला सम्पूर्ण चेतनाचेतन जगत् को ब्रह्ममय देखता है वह चेतनाचेतनात्मक जगत् व ब्रह्म यथार्थ ही है। इसी प्रकार मरु भूमि में जल की प्रतीति को समझना चाहिए।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय इति श्रुत्यर्थमाह।।

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिंत्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्।।८।।

भक्तेच्छया उपात्तः सुचिन्त्यविग्रहो येन तस्मादचिन्त्यशक्तेर-विचिंत्यसाशयात् आशयेन सह वर्तमानं साशयं चेष्टितम्। अविचिंत्यं ब्रह्मादिभिरविदितं चेष्टितं यस्य तस्मादत एवोक्तं ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।। ईदृशात्कृष्णपदारविन्दात् अन्या गतिर्न संदृश्यत इत्यन्वयः। भक्तानामिच्छा भक्तेच्छा सुचिन्त्यः ध्यातुं योग्यः।

उस परमात्मा को जानकर मृत्यु के पार जाता है इसके अतिरिक्त मोक्ष का अन्य कोई मार्ग नहीं है। इस श्रुति का अर्थ स्पष्ट करते हैं--

नान्यागतिः कृष्ण............................साशयात्।

भक्त की इच्छा से जिन्होंने ध्यान करने योग्य विग्रह को प्रगट किया और उनकी आशय सहित चेष्टा ब्रह्मा आदि के द्वारा भी नहीं जानी जा सकती उन ब्रह्मा-शिव आदि के द्वारा वन्दनीय श्रीकृष्ण चरणारविन्द के अतिरिक्त जीव की कोई अन्य गति नहीं है।

यथोक्तं श्रीभागवते-तान्येव तेऽभिरूपाणि भगवंस्तव। यानि यानि च रोचन्ते स्वजना नामरूपिणः। भक्तेच्छयोपात्तरूपाय परमात्मन्न-मोऽस्तु ते। स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत्। अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः। अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम्। स्वच्छन्दो-पात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्त्तये। अवतीर्णोऽसि भगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः।

यद्यद्धिया त उरगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय। रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय। भृत्यानुकंपित-धियेह गृहीतमूर्त्तेः स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यं। योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलं मूर्त्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धसदसदिदं विभातियत्र। अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया।। लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं मह्यं न न स्यात्फलमञ्जसा दृशः। इत्यादि।

परमपदविहारी नित्यदोषापहारी व्रजजनपरिवारी कामरूपो

मुरारिः।। अमलकमलहारी गोपिकास्वांतहारी जयति वनविहारी सर्व-माधुर्यधारी।।

इति श्रीपरमहंसवैष्णवाचार्य श्रीहरिव्यासदेवविरचिते
वेदान्तसिद्धान्तरत्नाञ्जलौ तृतीयः परिच्छेदः।।

श्रीमद्भागवत में कर्दम मुनि कहते हैं हे भगवन्! आप प्राकृत रूप से रहित है आपके जो चतुर्भुजादि अलौकिक रूप हैं वे ही आपके योग्य है। अर्थात् जो मनुष्य सदृश रूप आपके भक्तों को प्रिय लगते हैं वे भी आपको रुचिकर प्रतीत होते हैं।।१।। (३/२४/३१) इस प्रकार भक्त की इच्छा के अनुरूप परमात्मा स्वयं को प्रकट करते हैं।२।। अपने अनन्य प्रेमी भक्तजनों के निरन्तर स्मरण ध्यान करने के लिए आपका यह स्वरूप है।।३।। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान् ने ऐसे परम पवित्र यश का विस्तार किया।।४।। (श्रीमद्भागवत ६ स्कंद २४ अ.६१) भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए उनके अनुरूप भगवान् दर्शन प्रदान करते हैं।।५।। विशुद्ध ज्ञान मूर्ति होने पर भी अपनी इच्छा से जिन्होंने देह धारण किया ऐसे भगवान् को नमस्कार है।।६।। हे भगवन्! आप स्वेच्छा से अलग शरीर धारण करके अवतीर्ण हुए हैं।

हे भगवन्, आपके भक्तजन जिस-जिस भावना से आपका चिन्तन करते हैं उन साधु पुरुषों पर अनुग्रह करने के लिए आप वही-वही रूप धारण करते हैं।। (श्रीमद्भा. ३/६/११) आपकी चित् शक्ति के प्रकाशित रहने के कारण अज्ञान आपसे सदा ही दूर रहता है, आपने यह रूप सत्पुरुषों पर कृपा करने के लिए ही प्रकट किया है।।८।। (श्रीमद्भा. ३/६/२)

भृत्यों (भक्तों) पर दया की बुद्धि से भगवान् ने अनेक स्वरूप धारण किये और अपने भक्तों की भावनानुसार इन रूपों में सौन्दर्यसौष्ठव माधुर्य-मार्दवादि गुणों से पूर्ण स्वरूप में प्रकट हुए।।६।।

जो हम पर कृपा करने के लिए जहाँ सत्व संशुद्ध सद् असदादि प्रकाशमान है ऐसे में भगवान् भक्तों पर कृपा करके स्वरूप प्रगट करते हैं।।१०।।

भगवान् विष्णु पृथ्वी का भार उतारने के लिए स्वेच्छा से मनुष्य

की सी लीला कर रहे हैं। वे सम्पूर्ण लावण्य के धाम हैं। सौन्दर्य की मूर्तिमान निधि हैं। आज मुझे उनका दर्शन होगा अवश्य होगा मुझे मेरे आँखों का फल मिल जाएगा।।११।। (१०/३८/१०) इत्यादि श्रीमद्भागवत के उद्धरणों से भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वशरण्य हैं।

जो परम धाम में विहार करते हैं और दोषों को नित्य हरण करते हैं। जिनके व्रजवासीजन परिवार है। जिनका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है। ऐसे मुरारि शुद्ध कमल ग्रहण करने वाले गोपिकाओं के अन्तर्हृदय को हरण करने वाले वन में विचरण करने वाले सम्पूर्ण माधुर्य को धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की जय हो।

इति तृतीय परिच्छेद।

जगदुदयलयादेरेककर्त्ता हरिर्यः सततमवति जीवं भक्तिरूपात्म-शक्तिम्।। ददति निजजनेषु सत्यसंकल्पतोऽहं शरणवरणकामः कामये दासभावम्।।

श्रीकृष्णपदारविंदादन्या गतिर्जीवस्य न विद्यत इत्युक्तम्। तत्र कृष्णप्राप्तिस्तत्कृपयैव। ''नायमात्माप्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेनैव लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वा'' मित्यादिश्रुतेः।

जगद् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के अद्वितीय कर्त्ता सम्पूर्ण जीवों के रक्षक जो हरि हैं वो अपने अनन्य भक्तों को भक्तिरूप आत्मशक्ति प्रदान करते हैं। ऐसे भगवान् श्रीहरि के सत्य संकल्प से शरण ग्रहण करने की कामना वाला मैं दास भाव की कामना करता हूँ। श्रीकृष्णपदारविन्द के अतिरिक्त जीव की अन्य कोई गति नहीं है इस प्रकार कहा गया। इसमें कृष्ण की प्राप्ति उनकी कृपा से ही होगी। श्रुति प्रमाण है-''नायमात्माप्रवचनेनलभ्यो..'' यह परमात्मा न तो बोलने से प्राप्त होता है न बुद्धि से प्राप्त होता है और न बहुत सुनने से ही प्राप्त होता है। भगवान् ही जिसको स्वीकार करते हैं उस जीव के द्वारा ही वे प्राप्त होते हैं। उस कृपापात्र जीव के प्रति स्वयं को प्रकट करते हैं।

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयं प्रसादलेशानुगृहीत एव हि। जानाति

तत्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् इत्युपबृंहणभूत-श्रीभागवतवचनानुसारेणायं प्रसादलेशो दैन्यादिमत्येवाविर्भवतीत्याह कृपेत्यादिना।।

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा।।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमासाधनरूपिकाऽपरा।।६।।

दैन्यादियुजि दैन्यादिसम्पन्नेऽस्यानन्याधिपतेः श्रीकृष्णस्य कृपा प्रकटी भवति दैन्यादयस्तावद्दैन्यसन्तोषपरिचर्यानिवृत्तयः।। संतोषमिश्रन्दैन्यं श्रीभागवते। तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो भुंजान एवात्मकृतं विपाकम्।। हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् इति।।

श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है-हे देव! आपके दोनों चरण कमलों की किञ्चित् कृपा से ही आपकी महिमा को जीव तत्त्व सहित जानता है। इसके अतिरिक्त कोई भी चिरकाल तक चिन्तन करता हुआ भी नहीं जान सकता। इस प्रकार श्रीमद्भागवत में बताए गए कृपा प्रसाद को प्राप्त करने के लिए भगवन्निम्बार्काचार्य कहते हैं--

कृपास्यदैन्यादियुजि.................धपरूपिकाऽपरा।

दैन्यादि भाव सम्पन्न भक्त के ऊपर अनन्याधिपति श्रीकृष्ण की कृपा प्रकट होती है। दैन्यादि को स्पष्ट करते हैं-दैन्य-सन्तोष परिचर्या और निवृत्ति। सन्तोष युक्त दैन्य का श्रीमद्भागवत में इस प्रकार वर्णन किया गया है-जो जीव आपकी कृपा को भली-भाँति देखते हुए अपने पाप-पुण्य के फल को भोगता रहे हृदय, वाणी और शरीर से आपको नमस्कार करता रहे और जो मोक्ष की इच्छा रखने वाला हो ऐसा जीव ही आपकी कृपा का पात्र है।

परिचर्य्या यथा तत्रैव।। ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वश्रृगालभक्ष्ये इति। तत्रैव निवृत्तिः, स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया।। भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिहेति। एवं हि दैन्यसंतोषपरिचर्य्यानिवृत्तिरूपैः साधनैः संपन्ने भगवत्कृपा प्रजायते यथानुक्रमेण प्रेमलक्षणा भक्तिर्भवतीत्यर्थः।। तथाहि श्रीभागवते।। सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।। तज्जोषणादाश्व-पवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यतीति। तत्र कथास्तज्जोषणं च सत्संगावयवौ तयोस्तदन्तर्भूतत्वात् भगवद्धर्मरुचिरेव श्रद्धा।

परिचर्या के लिए भी श्रीमद्भागवत का उद्धरण देते हैं--अत्यन्त दुस्तर इस देवी माया को भगवान् के कृपापात्र ही पार करते हैं। परन्तु जिसकी मति कुत्ते श्रृगाल आदि के भोजन रूपी शरीर को मेरा मानती है ऐसे जीव इस माया को नहीं तर सकते। वहीं निवृत्ति के लिए भी कहा गया है-निवृत्ति धर्म का पालन करने वाला वह जीव निश्चय ही भगवान् वासुदेव की अनुकम्पा से भगवद्भक्ति योग के द्वारा धीरे-धीरे इस संसार से तिरोधान हो जाता है। इस प्रकार दैन्य, सन्तोष, परिचर्या और निवृत्ति रूप साधनों से सम्पन्न भक्त पर भगवद्कृपा होती है और क्रम से प्रेमलक्षणायुक्त भक्ति उत्पन्न होती है। और भी श्रीमद्भागवत में कहा है-सज्जन के सत्संग से पराक्रम युक्त मेरी लीला कथाओं को जाना जाता है। मेरे चरित्र हृदय और कर्ण के रसायन हैं इसके सेवन से मोक्ष के मार्ग भगवान् श्रीकृष्ण में श्रद्धा रति और भक्ति क्रम से प्रकट होंगे। वहाँ कथा और कला का सेवन सत्संग के अंग हैं, इन दोनों के अन्तर्भूत भगवद् धर्म में रुचि ही श्रद्धा है।

तथा च स्मृतिः।। कथाप्रधानेषु रुचिः प्रजायते सद्धर्मनिष्ठा हरिसेविनां सताम्।। संगे सदा कृष्णकथाः प्रगायतां तद्धर्मिणां तत्व नितान्तवेदिनामित्याद्या।। रतिस्तु श्रीभागवते-तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः। यदीश्वरे भगवति यथा यैरंजसा रतिरिति। रतेर्वैराग्यं तच्च चतुर्विधम्। वैराग्यमाद्यं यतमानसंज्ञं क्वचिद्विरागो व्यतिरेकसंज्ञः। एकेन्द्रियाख्यं हृदि रागसौक्ष्यं तस्याप्यभावस्तु वशीकृताख्यमिति।

स्मृति प्रमाण दर्शाते हैं-जो हरि की सेवा करने वाले सन्त हैं और सदा कृष्ण की कथा गाने वाले भागवतधर्मी एवं तत्त्ववेत्ता हैं उनके सत्संग से कथा में रुचि और सद्धर्म में निष्ठा उत्पन्न होती है। श्रीमद्भागवत में रति का वर्णन इस प्रकार प्राप्त है-हजारों उपायों में यह एक उपाय स्वयं भगवान् ने कहा है कि जिस प्रकार भगवान् में रति हो वही उपाय है। रति से वैराग्य उत्पन्न होता है यह वैराग्य चार प्रकार का है-प्रारम्भ में ''यतमान'' नामक

वैराग्य होता है, फिर किसी वस्तु में विराग होना ''व्यतिरेक'' नामक वैराग्य है तीसरा ''एकेन्द्रिय'' नाम का वैराग्य है जिसमें हृदय के सूक्ष्म राग रहते हैं चतुर्थ ''वशीकृत'' वैराग्य जिसमें हृदय के राग समाप्त हो जाते हैं।

अथ गुरूपस्मृतिः। यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान्ज्ञान-विरागरंहसा।। दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकेशं पंचात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्नि-रिति।। आचार्यस्तु उक्तसाधनसंपन्नं शिष्यं पंचसंस्कारान्विधाय भक्तिमुपदिशेत्।।

अब गुरु की उपस्मृति का वर्णन करते हैं-जब ज्ञान वैराग्य युक्त आचार्य (गुरु) की कृपा से ब्रह्म में निष्ठा वाली रति होती है तब पञ्चात्मक जीव कोष अर्थात् वासनायुक्त शरीर को ज्ञान-वैराग्य के योग से निर्मल हृदय जला देता है। जिस प्रकार अग्नि अपने कारणभूत काष्ठ को जला देती है। आचार्य को चाहिए कि उक्त साधन सम्पन्न शिष्य को पञ्चसंस्कार युक्त कर भक्ति का उपदेश प्रदान करें।

ते च संस्काराः पाद्मे तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः। अमी परमसंस्काराः परमकान्तिहेतव इति।। श्रीदशमे अक्रूरस्तुतौ च अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते।। यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्त्तिकमिति।। तत्र संस्कारेषु तापो नाम शंङ्खचक्रधारणम्।। ननु तप्तमुद्राधारणं ब्राह्मणस्य न युक्तम्।। यत्सुसंतप्तशङ्खादि लिङ्गांकित-तनुं पुनः। सम्भाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश इत्यादिश्रीबृहन्नार-दीयोक्तेरितिचेत्सत्यम्।। अस्य निषेधस्य श्रीद्वारिकास्थानतोऽन्यत्र स्थले तप्तचक्रादिधारणं यत्क्रियते तद्विषयकत्वमेव।। द्वारिकायां तप्तमुद्राधारणं तु सकलश्रुतिस्मृतिषु सिद्धम्।।

पद्मपुराण में पञ्चसंस्कार इस प्रकार बतलाए गए हैं-ताप, पुण्ड्र, नाम, मन्त्र और याग ये पाँचों परम संस्कार हैं जो भगवद् प्राप्ति में मुख्य हेतु हैं। श्रीमद्भागवत में अक्रूरजी स्तुति करते हैं-और भी बहुत से संस्कार सम्पन्न अथवा शुद्ध चित्त वैष्णवजन आपकी बतलाई हुई पाञ्चरात्र आदि विधियों से तन्मय होकर आपके चतुर्व्यूह आदि अनेक और नारायण रूप एक स्वरूप की पूजा करते हैं। उन पञ्च संस्कारों में ताप नामक संस्कार

शंख-चक्र धारण है किन्तु ब्राह्मणों के लिए तप्त मुद्रा धारण वर्जित है। नारदीय पञ्चरात्र में कहा गया है कि जिनका शरीर शंखादि चिह्न से संतप्त है ऐसा जीव रौरव नरक को प्राप्त होता है और चौदह इन्द्रों के समय तक नरक भोगता है इत्यादि जो कहा गया सत्य है। यह निषेध श्रीद्वारिका के अतिरिक्त स्थल में तप्त चक्रादि धारण का ही निषेध है। द्वारिका में तप्त मुद्रा धारण का तो श्रुति स्मृतियों में प्रमाण सिद्ध है।

तथाहि श्रुतयः ''सहोवाच याज्ञवल्क्यः तस्मात्पुमानात्महिताय प्रेम्णा हरिं भजेद्यत्सुश्लोकमौलेर्धामानि अग्निना सन्धत्त तस्माद्धामैव ब्रह्मविदाप्नोतिपर'' मिति पवित्रं विततं ब्रह्मणस्पतेः प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनुर्न तदा मोक्षमश्नुते सृतास इद्वहंतस्तत्समाशते'' इति।। एभिर्वयमुरुक्रमस्यचिह्नैरंकितालोके सुभगा भवेम तद्विष्णोः परमं पदं येऽभिगच्छन्ति लांच्छिता इत्याद्या।।

तप्त मुद्रा धारण के लिए श्रुति प्रमाण है-याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट कहा-इसलिए पुरुष अपने आत्म कल्याण के लिए हरि का भजन करें। भगवान् के धाम अर्थात् चक्रादि चिह्नों को अग्नि से तप्त करके धारण करें, ऐसे चिह्न धारण करने वाला ब्रह्मविद् परमधाम प्राप्त करता है, और भी पवित्र विस्तृत ब्रह्म और अधिपति प्रभु के चिह्न से अपने शरीर पर अंकित कर परम पद प्राप्त होता है। जिसका शरीर प्रभु के चिह्न से अंकित नहीं है वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। और भी हम इन उरुक्रम भगवान् के चिह्नों को अंकित कर लोक (संसार) में भाग्यशाली हैं। क्योंकि ऐसे चिह्न धारण करने वाले लोग विष्णु के उस परम धाम को प्राप्त करते हैं इत्यादि।

न चात्र द्वारकायां तप्तमुद्राधारणे प्रमाणाभावः। उक्तश्रुतिषु द्वारकापदप्रयोगाभावादितिवाच्यम्।। मार्गशीर्षमाहात्म्ये।। द्वारवत्यां सदा धार्या तप्तमुद्रा तु वैष्णवैः।। तप्तमुद्रांकितो यस्तु यत्कुर्यात्तन्मम प्रियम्।। तस्मात्सा यत्नतो धार्या तप्तमुद्रा विचक्षणैः।। तप्तमुद्रांकिता ये वै मदीया नात्र संशयः।। तप्तमुद्रां विना ये च तिष्ठन्ति मामका न ते।।

उपर्युक्त श्रुतियों में द्वारका में तप्त मुद्रा धारण करने के प्रमाणों का अभाव है क्योंकि श्रुतियों में तप्त मुद्रा धारण की बात स्पष्ट कही गयी परन्तु

द्वारका शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। इसके लिए स्मृति प्रमाण प्रस्तुत करते हैं मार्गशीर्ष माहात्म्य में भगवान् ने कहा है वैष्णवों को द्वारका में तप्त मुद्रा धारण करनी चाहिये, जो भक्त तप्त मुद्रा धारण करता है वह मेरा प्रिय है। इसीलिए यत्नपूर्वक बुद्धिमान वैष्णवजनों को चाहिए कि तप्त मुद्रा धारण करें जो तप्त मुद्रा धारण किये हैं वो मेरे ही है इसमें कोई संशय नहीं है। किन्तु तप्त मुद्रा विना जो रहते हैं वे मेरे नहीं हैं।

श्रुतीनां श्रीद्वारकास्थतप्तमुद्रापरतया स्मृतिभिरेव व्याख्यानात् तथाहि स्मृतयः।। दीक्षाकाले शयन्यां च सुबोधिन्यां यथाविधि।। द्वारकायां सदा धार्या तप्तमुद्रा तु वैष्णवैः।। तत्रापि कलिकाले तु द्वारकाया-मेवार्थतः।। अन्यदान्यत्र यथार्हदेशकालानुसारतः।। कुशस्थल्यां धारणीया तप्तमुद्राघध्वंसिनी।। शयनप्रबोधकाले दीक्षाकाले तथा हरेः।। वत्सरशो यावज्जीवं वैष्णवैः संप्रदायिभिः।। द्वारकायामंकनीया मुद्रा तप्तायुधैः सदा।। दीक्षाकालेष्विति ह्यतो विष्णोः शयनबोधयोरित्याद्याः।।

श्रुतियों में द्वारका में तप्त मुद्रा धारण करने की विधि का उल्लेख न होने पर भी श्रुति परक व्याख्या करने वाली स्मृतियों में द्वारका में ही तप्त मुद्रा धारण की विधि बताई गई है स्मृति प्रमाण दर्शाते हैं-दीक्षाकाल में भगवान् के शयन और प्रबोध काल में विधिपूर्वक द्वारका में वैष्णवों द्वारा तप्त मुद्रा धारण करनी चाहिये। उसमें भी कलिकाल में तो द्वारका में ही तप्त मुद्रा धारण करना विशिष्ट है और समय अन्यत्र भी देशकाल के अनुसार यथायोग्य धारण करें। सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली तप्त मुद्रा दीक्षाकाल अथवा हरि के शयन और प्रबोध काल में धारण करनी चाहिये। वैष्णवों का जितना जीवन रहे सदा द्वारका में तप्त मुद्रा धारण करना चाहिये।

अत्रायं विशेषः दीक्षाकाले शीतलमुद्रां धारयेत्। समयान्तरे श्रीगुरोराज्ञया द्वारवत्यां तप्तमुद्रां धारयेत्।। यथोक्तं प्रह्लादसंहितायां भगवता।। स्वीयप्रशिष्यद्वारैव कलिदोषनिवृत्तये।। स्थापितानि द्वारवत्यां कुमारैः सम्प्रदायतः। सतां तत्रोपदेयानि शस्त्राणि भुजमूलयोः। तप्तानि संस्कारतया गुर्वाज्ञयांतिके हरिरिति।

तथैव वाराहे कुमाराणां वाक्यम्। कृष्णायुधांकिते देहे गोपीचन्दन

मृत्स्नया। प्रयागादिषु तीर्थेषु गत्वा किं करिष्यति।। कृष्णायुधांकितं दृष्ट्वा गोपीचन्दनमृण्मयं।। प्रयागादिषु तीर्थेषु गत्वा किंकरिष्यति। शंखचक्रगदापद्मराधाकृष्णाद्ययांकिता।। मुद्रा गोपीचन्दनेन सन्धार्या कृष्णप्रापणी।।

सन्तप्ततनुभिरपि किमु ते तु मुनीश्वरैः। द्वारवतीं न्यस्तताषां परम्परापरायणैरिति। अत्रायमाशयः। द्वारिकां प्रति गन्तुमसर्थानां शीतलमुद्राधारणमेव युक्तं समर्थानां तु मुद्राद्वयस्यापि धारणमिति। धारणप्रकारविधिस्तन्महिमा च ग्रन्थान्तरे द्रष्टव्यः। इह तु विस्तरभयान्न लिखितः।।

यहाँ पर यह विशेष है कि दीक्षाकाल में वैष्णव शीतल मुद्रा धारण करें। अनुकूल समय में श्रीगुरु की आज्ञानुसार द्वारका में तप्त मुद्रा धारण करें। जैसे प्रह्लाद संहिता में भगवान् कहते हैं-अपने प्रशिष्य अर्थात् भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा कलिदोष की निवृत्ति के लिए सनकादिकों ने सम्प्रदाय से ही द्वारका में आयुध स्थापित किये, जिससे सज्जनों को भुजमूल में संस्कार पूर्वक गुरु आज्ञा से हरि के निकट तप्त मुद्रा धारण करना योग्य है। इसी प्रकार वाराहपुराण में सनकादिकों का वाक्य है कि जिनका देह श्रीकृष्ण के आयुध से अंकित और गोपीचन्दन मृत्तिका से लिप्त है ऐसे व्यक्ति प्रयागादि तीर्थों में जाकर क्या करेंगे। जिन्होंने श्रीकृष्ण के आयुध अंकित और गोपीचन्दन चर्चित वैष्णवों का दर्शन किया ऐसे जन प्रयागादि तीर्थों में जाकर क्या करेंगे। भगवान् को प्राप्त कराने वाली शंख-चक्र-गदा-पद्म और राधाकृष्ण के नाम अंकित गोपीचन्दन की मुद्रा धारण करने योग्य है। सन्तप्त देह वाले मुनीश्वर भी परम्परा परायण होकर द्वारका में तप्त मुद्रा धारण करते हैं तो औरों की बात ही क्या इन सबका यह आशय समझना चाहिए कि जो लोग द्वारका जाने में असमर्थ हों वे शीतल मुद्रा धारण करें समर्थों को तो मुद्रा अवश्य धारण करनी चाहिए। धारण प्रकार विधि और महिमा अन्य ग्रन्थों में देखें, यहाँ विस्तार के भय से नहीं लिखा गया।

अथ ऊर्ध्वपुंड्रे महोपनिषदि। धृतोर्ध्वपुंड्रः परमेशितारं नारायणं सांख्ययोगाभिगम्यम्।। ज्ञात्वा विमुच्येत नरः समस्तैः संसारपाशैरिह

चैव विष्णुमिति। तथैव कठशाखायां धृतोर्ध्वपुंड्रः श्रितचक्रधारी विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा स्वरेण मंत्रेण सदा हृदिस्थितं परात्परं यो महतो महान्तमित्यादिना।

अब ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक का वर्णन करते हैं। महोपनिषद् में बताया गया है-जो मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं वे सांख्य योग के द्वारा प्राप्त होने वाले परमेश्वर नारायण को जानकर समस्त संसार के फंदे से छूट जाते हैं, इसी प्रकार कठ शाखा में भी बताया गया है-ऊर्ध्वपुण्ड्र और श्रित चक्रधारी जो महात्मा हैं वे सदा हृदय में स्थित परात्पर और महतो महीयान् भगवान् विष्णु का मन्त्र के स्वर से ध्यान करते हैं इत्यादि।

ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणं सर्वेषां विहितम् यथोक्तं पद्मपुराणे भगवता स्वयम्। मत्प्रियार्थं शुभार्थं वा रक्षार्थं चतुरानन। मत्पूजाहोमकाले तु सायंप्रातः समाहितः।। मद्भक्तो धारयेन्नित्यं ऊर्ध्वपुंड्रं भयापहम्। तत्रैव शिवः धारयेदूर्ध्वपुंड्रं तु त्रिसन्ध्यासु द्विजोत्तमः। सर्वपापविशुद्ध्यर्थ मिष्टापूर्त्तफलाप्तय इति। तत्र तिलकद्रव्यं च गोपीचन्दनमुत्तमम्। तथाच गारुडे श्रीनारदवचनम् गोपीचन्दनसम्भवं सुरुचिरं पुंड्रं ललाटे यदि।। नित्यं धारयते द्विजः प्रतिदिनं रात्रौ दिवा सर्वदा।। यत्पुण्यं कुरुजांगले रविग्रहे माध्यां तु पुण्यं भवेत्तत्प्राप्नोति खगेन्द्र विष्णुसदने सन्तिष्ठते देव-वदिति।।

सबके लिए ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना विहित है जैसे पद्मपुराण में स्वयं भगवान् ब्रह्मा से कहते हैं-हे चतुरानन! मेरी प्रसन्नता के लिए शुभ के लिए अथवा रक्षा के लिए मेरी पूजा के समय में होमकाल में प्रातः एवं सायंकाल में मेरा भक्त सम्पूर्ण भय को नष्ट करने वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र नित्य धारण करें। पद्मपुराण में ही भगवान् शिव कहते हैं-श्रेष्ठ ब्राह्मण कामना पूर्ति के लिए तथा सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने के लिए तीनों काल ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें। उस तिलक का द्रव्य उत्तम गोपीचन्दन है। और भी गरुड़पुराण में श्रीनारदजी का वचन है- हे खगेन्द्र! गोपीचन्दन से चर्चित ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक यदि ललाट में है जो द्विज सदा सर्वदा रात-दिन तिलक धारण करता है वह सूर्य ग्रह के समय में कुरुक्षेत्र में स्नान करने से अथवा माघ माह में

स्नान करने का पुण्य प्राप्त होता है वह सब प्राप्त कर लेता है तथा भगवान् विष्णु के लोक में भगवान् सदृश निवास करता है।

अथर्वणिरहस्ये च। श्रीकृष्णाख्यं परं ब्रह्म गोपिका श्रुतयोऽभवन् एतत्सम्भोगसम्भूतं चन्दनं गोपीचन्दनम्।। श्रुत्यन्तरे च तद्धोवाच भगवान्वासुदेवो वैकुण्ठस्थानोद्भवं मम प्रीतिकरं मद्भक्तैर्ब्रह्मादिभिर्धारितम्। विष्णुचन्दनं ममांगे प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनाद्गोपीचन्दन-माख्यातम्।। मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थादिसंस्थितम्। शंखचक्रसमायुक्तं पीतवर्णं मुक्तिसाधनं भवतीति। ब्रह्मादिभिरिति।। ब्रह्मा आदि पिता येषां तैः सनकाद्यैरित्यर्थः।। मृदुपादानस्तत्रैव चक्रकौस्तुभः। गोपीचन्दन पापघ्न विष्णुदेहसमुद्भव।। चक्रांकित नमस्तेस्तु धारणान्मुक्तदो भव।

अथर्वणरहस्य में कहा गया है परंब्रह्म तो स्वयं श्रीकृष्ण हैं और श्रुतियाँ गोपी हैं, इनके सम्भोग से उत्पन्न चन्दन ही गोपीचन्दन है। अन्य श्रुति में इस प्रकार कहा गया है-भगवान् वासुदेव ने कहा-वैकुण्ठ में उत्पन्न मुझे प्रसन्न करने वाला मेरे भक्त व ब्रह्मादियों द्वारा धारण किया जाने वाला विष्णु चन्दन गोपियों ने मेरे अंग में प्रतिदिन लगाया उसके प्रक्षालन से गोपीचन्दन इस नाम से प्रख्यात हुआ। मेरे अंग का लेपन चक्र तीर्थादि पुण्य स्थानों में स्थित शंख-चक्र सहित पीला वर्ण मुक्ति का साधन होता है। श्रुति में प्रयुक्त ब्रह्मादिभिः इस शब्द का आशय स्पष्ट करते हैं-ब्रह्मा आदिपिता जिनके हैं ऐसे अर्थात् सनकादि ऋषि यह आशय है। मृत्तिका ग्रहण के लिए अथर्वणरहस्य में चक्र कौस्तुभ कहते हैं-विष्णु के देह से उत्पन्न सम्पूर्ण पापों को हरने वाले चक्राङ्कित गोपीचन्दन तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे धारण से मुक्ति देने वाले बनो।

अश्वक्रान्ते रथक्रांते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदे पदे। गोलोकादागतासि त्वं गोपगोपीस्वरूपिणी।। विश्वाधारे विश्वभोक्त्रि त्वां मृदं धारयाम्यहम्।। अथ तिलकस्वरूपं यजुर्वेदहिरण्य-केशिशाखायाम्।। हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्ये छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यभाग्भवति स मुक्तिभाग्भवति।। अनया हि श्रुत्या स्वरूपं विहितम्। एवञ्च शाखाप्रत्ययन्यायेन श्रुत्यन्तरेष्व-

प्येतदेव स्वरूपमिति ज्ञायते।। यथोक्तं श्रीमत्सनत्कुमारैर्नारदं प्रति नासिकामूलमारभ्य ललाटां तं समन्वितम्।। साधिकांगुलांतरामधिकं तूत्तरोत्तरम्।। रेखाद्वयविनिर्मितं समृजुहरिमन्दिरम्।। ब्रीहिमात्रपृथू पार्श्वौ चतुरंगुललम्बकौ।। सम्मीलितमूलौ सांद्रशुभमृदा विनिर्मितौ। पृथगंताप्रक्षीणावेकरसौ स्यातामृजू।। नासिकाकेशपर्यन्तं दण्डकारंसुशोभनं मध्यच्छिद्रं समायुक्तं कथ्यते हरिमन्दिरमिति। पूर्वोक्तमन्त्रैः गोपीचन्दन तुलसीमूलमृत्तिकां वा श्यामवन्दनीयां वा समादाय अष्टादशाक्षरेणाभिमंत्र्य ललाटादिषु तत्तत्केशवादिमूर्त्तिं ध्यात्वा तत्तन्मन्त्रेण द्वादशपुण्ड्राणि धारयेत्।।

अश्व, रथ और विष्णु के द्वारा आक्रान्त हे वसुन्धरा मैं तुम्हें शिर पर धारण करता हूँ पद-पद पर मेरी रक्षा करो। गोप-गोपी स्वरूप वाली तुम गोलोक आयी हो। विश्व को धारण करने वाली और विश्वभोक्तृ तुम मृत्तिका को मैं धारण करता हूँ। तिलक के स्वरूप के सम्बन्ध में यजुर्वेद की हिरण्यकेशी शाखा में कहा गया है-अपने कल्याण के लिए श्रीहरि के चरण की आकृति वाला और मध्य में छिद्र वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक जो धारण करता है वह भगवान् का प्रिय होता है और वह पुण्यवान् व मोक्ष का भागी होता है। इसी श्रुति ने तिलक का स्वरूप बताया है। इसी प्रकार शाखा प्रत्यय न्याय से इसी प्रकार का स्वरूप ज्ञात होता है जैसे श्रीसनकादिकों ने श्रीनारद से कहा-नासिका के मूल से आरम्भ करके ललाट के अन्त तक समन्वित एक अंगुल से अधिक चौड़ा और उत्तरोत्तर चौड़ा होता हुआ दो सम रेखाओं से निर्मित तिलक हरि का मन्दिर है। रेखा की मोटाई जौ के तुल्य हो और लम्बाई चार अंगुल हो, मूल में जुड़ा हुआ, सुन्दर पवित्र मृत्तिका का बना हुआ अन्त में नहीं जुड़े हुए दो रेखा वाला अखण्डित होना चाहिये। नासिका से केश पर्यन्त दण्डाकार सुन्दर मध्य में छिद्र वाला निर्मित तिलक हरि मन्दिर कहलाता है। पूर्वोक्त मन्त्रों से गोपीचन्दन तुलसी के मूल की मृत्तिका अथवा श्याम वन्दनीय मिट्टि लेकर अष्टादशाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित करके ललाटादि स्थानों में केशवादि बारह नामों का ध्यान करके उन-उन मन्त्र से द्वादश पुण्ड्र धारण करें।

तथोक्तं पद्मपुराणे।। श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदमादाय भक्तिमान् धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि हरिस्तत्र प्रसीदति।। द्वारवत्यां शुभे रम्ये बासुदेवहृदे तथा। तत्रोद्भवां मृदां शुभ्रामादाय द्विजसत्तमः।। धारयेदूर्ध्वपुंड्राणि सर्व-कामफलाप्तये।। स्कन्दपुराणे।। क्रियाविहीनं यदि मन्त्रहीनं श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितः। कृत्वा ललाटे यदि गोपीचंदनमाप्नोति तत्कर्मफलं सदाव्ययमिति।। मूलमन्त्रेणान्तरालेषु सूक्ष्ममुक्तानिभं समं धारयेत्।। यथोक्तं सनकादिभिः कूर्चे कञ्जाकारं समं धारयेद्धरिमन्दिरे।। सह मया राधया यः स कृष्णः सम उच्यते।। श्रीनारदश्चाह भ्रुवोर्मुक्ताकारं समं धारयेद्धरिमन्दिरे।

उक्त विषय में पद्मपुराण में इस प्रकार वर्णन मिलता है-भगवान् श्रीकृष्ण की प्रिया तुलसी के मूल की मृत्तिका को लेकर भक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें ऐसा करने से भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। सुन्दर रमणीय द्वारका में तथा वासुदेव हृद (अर्थात् गोप तलाई) में उत्पन्न हुई शुभ्र मृत्तिका को लेकर सम्पूर्ण कामना की सिद्धि के लिए विप्रगण ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें। स्कन्दपुराण में कोई क्रिया विहीन हो मन्त्रहीन हो श्रद्धा से रहित हो और यदि कालवर्जित भी हो तो ललाट में यदि गोपीचन्दन का तिलक लगा हो तो उनके समान अव्यय फल की प्राप्ति होती है। मूल मन्त्र के द्वारा दोनों रेखाओं के मध्य में सूक्ष्म मुक्ता के समान बिन्दु धारण करना चाहिये। जैसे कि श्रीसनकादिकों ने कहा है। हरि मन्दिर जो तिलक है इस मन्दिर के बीच में कमल के समान बिन्दु धारण करें। इस प्रकार राधा सहित मुझ कृष्ण को धारण करने वाला भी श्रीकृष्ण के समान हो जाता है। श्रीनारदजी ने भी दोनों भ्रुवों के मध्य तिलक के मध्य मुक्ताकार बिन्दु धारण करने की विधि बताई है।

श्रुतिश्च। समायुक्तं तिलकं मुक्तिसाधनं भवतीति। अथ नामोक्तं सनत्कुमारागमे सनकैर्नारदं प्रति, संकेतयेद्धरेर्नाम सम्प्रदायानुसारतः। शिष्यो सर्वमङ्गलाय मेधावी जनशङ्करः। तथा च श्रुतिः, अङ्कये च्छंखचक्राभ्यां नामकुर्य्याच्च वैष्णवमिति। तथा च स्मृतिः, कृपालुः किंकरादिषु भगवन्नाम स्थापयेदिति, तच्च नाम संकेतद्विविधं सेव्यसेवक-

सम्बन्धज्ञापकं औपचारिकञ्चेति। तत्राद्यं कृष्णदासादि नाम संबन्धज्ञापकम्। औपचारिकं तु श्रीकृष्णचन्द्रादिनाम अन्ते दासपदरहितत्वान्नामाभासमिदम्।। अनेनाप्यजामिलादयो बहवो भगवत्स्वरूपं प्राप्ताः।

श्रुति में कहा गया है-लक्ष्मी सहित तिलक मुक्ति का साधन है। अब नाम संस्कार का वर्णन करते हैं-श्रीसनकादिकों ने श्रीनारद मुनि के प्रति सनत्कुमारागम में कहा है-सम्प्रदाय के अनुसार हरि के नाम का संकेत करना चाहिये। सम्पूर्ण जनों के हित करने वाले बुद्धिमान् पुरुष शिष्य को हरि का नाम प्रदान करें। श्रुति में भी वैष्णव अपने शरीर पर शंख-चक्र और भगवान् के नाम अंकित करें। स्मृति में भी दयालु अपने किंकर अर्थात् परिकर के भी भगवन्नाम स्थापित करें। नाम संकेत दो प्रकार के हैं एक तो सेव्य सेवक सम्बन्ध का ज्ञान कराने वाला और दूसरा है औपचारिक कृष्णदास आदि दास पद युक्त नाम सेव्य-सेवक सम्बन्ध को सूचित करने वाला है। दास आदि पद रहित भगवान् के नाम मात्र श्रीकृष्णचन्द्र आदि औपचारिक नाम हैं। इससे नाम का आभास होता है। अजामिल आदि बहुत से लोग ऐसे भगवन्नाम से भगवद् स्वरूप को प्राप्त हो गये।

दासपदान्ते नाम च श्रीभागवते।। दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्वम्।। तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते।। तावद्रागादय स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्।। तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः यावत्ते दासा न भवन्तीत्यर्थः।। मंत्रस्तु सत्सम्प्रदायप्राप्तसद्गुरोर्मुखाच्छ्रोतव्यः गुरुरपि सुमुहूर्त्ते सर्वतोभद्रे नवकुम्भं निधाय सर्वौषधीपञ्चरत्नं सवस्त्रं कुम्भे स्थापयेत्। ततः श्रीकृष्णपूजां कृत्वा शिष्ये न्यासं कृत्वाऽभिषिच्य मंत्रं दद्यात्।। तत्राऽप्यशक्तौ मण्डले कृष्णमभ्यर्च्य अष्टवारं शिष्यमभिषिच्योपदिशेत्। दीक्षेत मेदिनीं सर्वां किंपुनश्चोपसन्नतामिति, श्रीनारदपञ्चरात्रोक्तेः। प्राणिमात्रेष्वनुग्रहः कर्तव्यः।

नाम के अन्त दास पद के लिए श्रीमद्भागवत में कहा गया है-हे अच्युत! आप अनन्य शरण दास को आत्मसात् करते हैं तो इसमें आश्चर्य नहीं। (भा.११/२९/४) दशम स्कन्ध में भी तब तक उसके रागादिक चौर है और तब तक यह घर बन्दीघर है और वहीं पर्यन्त मोह की बेडी चरण

में है जब तक कोई आपका दास नहीं हो सकता। मन्त्र संस्कार तो सत्सम्प्रदाय से प्राप्त सद्गुरु के द्वारा सुनना चाहिए। गुरु को भी शुभ मुहूर्त में सर्वतोभद्र निर्माण करके उसमें नया घट रखकर सम्पूर्ण औषधियाँ पञ्चरत्न और वस्त्र कुम्भ में स्थापना करनी चाहिये तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की पूजा करके शिष्य के प्रति न्यास करके अभिषेक कर मन्त्र दीक्षा प्रदान करनी चाहिये। यह सब करने में असमर्थ हो तो मण्डल में श्रीकृष्ण की अर्चना कर शिष्य का आठ बार अभिषेक कर मन्त्रोपदेश करें। श्रीनारदपञ्चरात्र में वचन है कि-सम्पूर्ण पृथ्वीवासी को दीक्षा प्रदान करना चाहिये। यदि कोई शरणागत हो तो उसके सम्बन्ध में क्या कहना। प्राणिमात्र पर सद्गुरु अनुग्रह करें।

ननु नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न वृतं नाप्युपोषणम्। पतिशुश्रूषणं यत्तु तेन स्वर्गे महीयते, इत्यादिशास्त्रवाक्यश्रवणाधिकारो नास्ति स्त्रीणामितिचेत्सत्यं, स तु निषेधो भक्तिहीनायां न तु भक्तिमत्यां, तथोक्तं नारदपञ्चरात्रे त्रयोदशपटले, स्त्रियं विशेषतो दीक्षेदतिभक्तिसमन्वितामित्यादिना, यागश्च श्रीभागवते।। द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः। भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हीति, स च यागोऽष्टधा। तथोक्तं सनकादिभिर्नारदं प्रति। शैलं दारुमयं लौहं लेप्यं लेख्यं च सैकतम्।। मनोमयं मणिमयं यागं त्वष्टविधं विदुरिति।

यहाँ शंका उपस्थित होती है कि स्त्रियों के लिए पृथक् यज्ञ, व्रत और उपवास का विधान नहीं है पति की सेवा से ही स्त्रियाँ स्वर्गादि महिमा प्राप्त करती है इत्यादि शास्त्र वचनों से स्त्री दीक्षा की अधिकारिणी नहीं है फिर यह कैसे सम्भव होगा कि गुरु प्राणि मात्र को उपदेश प्रदान करें। शास्त्र वचन सत्य है परन्तु यह निषेध वाक्य भक्तिहीन स्त्रियों के लिए है भक्तिमती स्त्रियों के लिए नहीं। जैसे कि श्रीनारदपञ्चरात्र के त्रयोदश पटल में कहा गया है अत्यन्त भक्ति से युक्त स्त्रियों को विशेष रूप से दीक्षित करना चाहिये। इत्यादि। याग के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में कहा गया है-जो भी प्रसिद्ध द्रव्य जितना प्राप्त हो उससे मेरी प्रतिमा रूप याग में निष्कपट भाव से पूजन करें और बाद में हृदय की भावना से पूजन करें। भगवान् के द्वारा बताया गया प्रतिमा याग आठ प्रकार का है। श्रीसनकादिकों ने श्रीनारद को इस

प्रकार उपदेश किया था। १-पाषाण २-लकड़ी (काष्ठ) ३-लौह ४. बालू से निर्मित तथा ५-लेपन ६-लेखन से निर्मित तथा ७-मनोयोग और ८-मणिमय इस प्रकार आठ प्रकार का प्रतिमारूप याग समझना चाहिये।

केचित्तु हरिगुरुवैष्णवोद्देशेन द्रव्यत्यागो याग इत्याहुः।। तच्चिंत्यम्।। समर्पणे श्रीभागवतम्।। यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः। तत्तन्निवेदयन्मह्यं तदानंत्याय कल्प्यतेति। आदौ चरणामृतमेव ग्राह्यम्। तथाच गारुडे, पादोदकं पिबेन्नित्यं नैवेद्यं भक्षयेद्धरेः।। शेषा स्वमस्तके धार्या इति वेदानुशासनम्, इतिवचनाद्भगवन्निवेदितभोज्यभोजनमप्यावश्यकम्। तथा चैकादशे, त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः। उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहीति।। ननु स्वयमर्पितस्य पुनर्भोजनमयुक्तम् ।। दत्तापहारदोषप्रसङ्गादितिचेन्न।। वाचनिकेऽर्थे युक्तेरप्रयोजकत्वात्।।

कोई कहते हैं कि श्रीहरि गुरु एवं वैष्णवजन के उद्देश्य के लिए द्रव्य का त्याग करना ही याग है। यह विचारणीय है। समर्पण के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में बताया गया है-संसार में जो भी अत्यन्त प्रिय और इष्टतम है वह सब मुझ भगवान् को निवेदन करें तो वह अनन्त हो जाता है। पहले चरणामृत को ही ग्रहण करना चाहिये। जैसे गरुड़पुराण में कहा गया है-श्रीहरि के चरणामृत का नित्य पान करना चाहिए व प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। चरणामृत का जो शेष है उसे मस्तक पर धारण करना चाहिये। यह वेदाऽनुशासन (विधि) है। इत्यादि वचनों से भगवान् को निवेदित भोज्य का भोजन भी आवश्यक है। इसी प्रकार एकादश स्कन्ध में श्रीमद्भागवत में वर्णन है-भगवान् आपके द्वारा मुक्त माला बन्ध वस्त्र आभूषणादि धारण करवाने और आपके उच्छिष्ट भोजन करने वाले आपके दास हम माया को जीतते हैं। यहाँ शंका है कि स्वयं अर्पित किया हुआ भोजन पुनः ग्रहण करना तो अयुक्त है, जैसे कि-दान दिया हुआ वस्तु फिर लेना दोष कहलाता है, फिर कैसे भगवान् को अर्पित भोज्य का हम प्रसाद ग्रहण कर सकते हैं। इसके समाधान में कहते हैं कि उक्त विषय में शब्द प्रमाण की युक्ति नहीं लग सकती।

तथाहि पद्मपुराणे अम्बरीषं प्रति गौतमः।। अम्बरीष नवं वस्त्रं फलमन्नं रसादिकम्।। कृत्वा कृष्णोपभोग्यं हि सदा सेव्यं च वैष्णवैः। श्रुतिश्च, एक एव नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेमे द्यावापृथिव्यौ।। सर्वे पितरः सर्वे मनुष्या विष्णुनाशितमश्नन्ति विष्णुना घ्रातं जिघ्रन्ति विष्णुना पीतं पिबन्तीत्याद्याः।। अत्रहि प्रकारत्रयं निवेदनं दानं अर्पणंचेति। तत्र दानं नाम स्वीयतात्यागः परस्वत्वापादनविधिः। अर्पणं च स्वामिभोज्यस्य स्वामिने ज्ञापनम्।। निवेदनं तु स्वोद्देश्यद्रव्यस्य श्रीकृष्णाय ज्ञापनं, ततश्च तदाज्ञया स्वीकारः स च गुण एव यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैरित्यादि श्रीगीतोक्तेः। एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः।। त एवात्मविनाशाय कल्प्यन्ते कल्पिता परे इति श्रीभागवतोक्तेश्च।

जैसे कि पद्मपुराण में गौतम ऋषि राजा अम्बरीष को कहते हैं-अम्बरीष! नवीन वस्त्र-फल-अन्न तथा रसादि श्रीकृष्ण को भोग लगाकर वैष्णवजनों को नित्य सेवन करना चाहिए। श्रुति भी प्रमाण है-एक नारायण ही पहले थे,न ब्रह्मा, न स्वर्ग और न पृथ्वी थे। सम्पूर्ण पितृगण और सम्पूर्ण मनुष्य विष्णु के द्वारा खाई हुई वस्तु ही खाते हैं। उनके द्वारा गन्ध ली हुई वस्तु का ही गन्ध ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा पान की गई वस्तुओं का ही पान करते हैं इत्यादि। यहाँ समर्पण के तीन प्रकार जानना चाहिए-१-निवेदन २-दान ३-अर्पण। इनमें से दान का अभिप्राय अपनत्व का त्यागकर परत्व का अपादान विधि से समर्पण ही दान है। अर्पण का तात्पर्य स्वामी के उपभोग की वस्तु स्वामी को ज्ञापन करना अर्पण है। निवेदन का तात्पर्य अपने उद्देश्य के द्रव्य का भगवान् को ज्ञापन कराना तत्पश्चात् उनकी आज्ञा से स्वीकार करना ही निवेदन है। अर्थात् भगवान् को निवेदन करके स्वयं ग्रहण करना दोष नहीं है। भगवान् ने गीता में भी स्वयं कहा है कि यज्ञ का अवशिष्ट भोजन करने वाले सन्त सम्पूर्ण पापों से मुक्त होते हैं। श्रीमद्भागवत में भी सम्पूर्ण क्रिया योग मनुष्य के जन्म मरण के कारण है। स्वयं के लिए क्रिया करना आत्म-विनाश का कारण होता है और यही क्रियाएँ भगवान् को अर्पित हो तो जन्म-मरण का नाश करने वाली होती है।

एवं च देवतान्तरपूजनं श्रीकृष्णप्रसादेनैव पूर्वोक्तश्रुतेः। विष्णु-पादोदकेनैव पितॄणां तर्पणं क्रियेतेतिस्मृतेः। महाभारते च, सात्वतं विधिमास्थायप्राक्सूर्यमुखनिःसृतम्।। पूजयामास देवेशं तच्छेषेण पितामहानिति।। व्यतिरेकेणाह हि गौतमः पद्मपुराणे अम्बरीषं प्रति।। अनर्पयित्वा गोविन्दं यो भुंक्ते धर्मवर्जितः। शुनो विष्टासमं चान्नं नीरं तत्सुरया समम्।। अनिवेद्य च यो भुंक्ते हरये परमात्मने।। मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः। इति सर्वमनवद्यम्।। भक्तिस्तु गुरोरेव लभ्यते इत्युक्तम्। तथा हि तन्त्रे, गुरोर्वै लभ्यते भक्तिः सा ज्ञेया प्रेमलक्षणा। या प्रापयति गोविन्दं वल्लवीवल्लभं विभुम्।।

इसी प्रकार अन्य देवताओं का पूजन श्रीकृष्ण के प्रसाद से ही करना चाहिये यह पहले ही श्रुतियों में बताया गया है। स्मृति प्रमाण है-श्रीविष्णु के चरणामृत से ही पितरों का तर्पण करना चाहिये। महाभारत में सनातन विधि अनुसार पहले सूर्य के मुख से निकले देवेश नारायण का पूजन कर शेष सामग्री से पितामह आदि का पूजन किया। इसी प्रकार पद्मपुराण में राजा अम्बरीष को गौतम ऋषि व्यतिरेक से समझाते हैं कि धर्म विपरीत जन गोविन्द को अर्पण किये बिना स्वयं ग्रहण करता है वह अन्न श्वान के विष्टा समान है और जल मदिरा के समान है। जो भी परमात्मा श्रीहरि को निवेदन किये बिना स्वयं उपभोग करता है उसके पितरगण सदा के लिए नरकवासी हो जाते हैं। उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि भगवान् को अर्पित प्रसाद ग्रहण करना दोष रहित है। भक्ति तो गुरु से ही प्राप्त होती है जैसे तन्त्र में कहा गया है-भक्ति गुरु से ही प्राप्त होती है। जो भक्ति गोपियों के प्रिय भगवान् को प्राप्त कराये उसको प्रेमलक्षणा भक्ति जानना चाहिये।

आह च भगवान् कपिलो भक्तिलक्षणम्।। देवानां गुणलिङ्गानां आनुश्रविककर्मणाम्।। सत्व एवैक मनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या।। अनिमित्ता भागवतीर्भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी।। जरयत्याशु या कोशं निगीर्ण मनलो यथेति। अत्रायमर्थः, संघर्षणेन जातोऽग्निर्वंशान् दहति कृत्स्नशः। न तु मूलं धराच्छन्नं पुनश्चारोहणं यतः।। तथैव सावशेषं हि रतिर्लिङ्गं दहेदृढा।। न भूम्यंतर्गतंमूलंयज्ञायते पुनः क्वचित्।। निगीर्णं जठरजीर्णं

यथा पुनरुप्यते।। तथैव भक्तिजीर्णं हि लिङ्गं न पुनरुप्यते इति।

भगवान् कपिल ने श्रीमद्भागवत में भक्ति का लक्षण इस प्रकार बताया है-जिसका चित्त एकमात्र भगवान् में ही लग गया है ऐसे मनुष्य की वेद विहित कर्म में लगी हुई तथा विषयों को ज्ञान कराने वाली इन्द्रियों की जो सत्वमूर्ति श्रीहरि के प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है वही भगवान् की अहैतुकी भक्ति है। यह मुक्ति से भी बढकर है क्योंकि जठरानल जिस प्रकार खाये हुए अन्न को पचाता है उसी प्रकार यह भी कर्म संस्कारों के भण्डार रूप लिङ्ग शरीर को तत्काल भस्म कर देती है (श्रीभा. ३/२५/३२-३३)

तथा च सनिमित्ता चापरिछिन्नेन्द्रियवृत्तिः रतिः स्वाभाविकी। अनिमित्ता त्वपरिछिन्नेन्द्रियवृत्तिर्भक्तिरितिलक्षणंफलितमिति रतिभक्त्यो-र्विवेकः। उक्तश्चायंक्रमः श्रीकेशवकाश्मीरिचरणैः, आदौ दैन्यं हि सन्तोषः परिचर्या ततः परम्। ततः कृपा च सत्सङ्गोऽथ सद्धर्मरुचिस्ततः। कृष्णे रतिस्ततो भक्तिर्या प्रोक्ता प्रेमलक्षणा। प्रादुर्भावे भवेदस्याः साधकानामयं क्रम इति।।

रति और भक्ति के लक्षण बताते हैं- रति उसको कहते हैं जो सनिमित्त और अपरिच्छिन्न इन्द्रियवृत्ति श्रीहरि के चरणों में उत्पन्न हो। स्वाभाविकी अर्थात् अनिमित्त अपरिच्छिन्न इन्द्रियवृत्ति हो तो वही भक्ति है। पूर्वाचार्यवर्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यजी महाराज ने भक्ति का यह क्रम बताया है--

आदौ दैन्यं हि सन्तोषः परिचर्या ततः परम्
ततः कृपा च सत्सङ्गोऽथ सद्धर्मरुचिस्ततः।
कृष्णे रतिस्ततो भक्तिर्या प्रोक्ता प्रेमलक्षणा
प्रादुर्भावे भवेदस्याः साधकानामयं क्रमः।।

सर्वप्रथम साधक दैन्य और सन्तोषादि गुणों से युक्त हो फिर वह परिचर्या करे। तदनन्तर उसको भगवान् की परोक्ष कृपा प्राप्त होती है जिससे सत्सङ्ग मिलता है। सत्सङ्ग से सद्धर्म में रुचि उत्पन्न होती है। इसके उपरान्त श्रीकृष्ण में रति होती है तब भक्ति प्रकट होती है। भक्ति के उदय होने पर प्रेमलक्षणा भक्ति होती है। इस प्रकार साधकों का क्रम समझना चाहिये।

अथ सामान्यतो भक्तिर्द्विविधा।। विहिताऽविहिताचेति।। तत्राविहिता भक्तिश्चतुर्विधा।। कामजा द्वेषजा भयजा स्नेहजा चेति।। विहिता भक्तिरपि द्विविधा फलरूपा साधनरूपा चेति।।

अब भक्ति का लक्षण बताते हैं। वह दो प्रकार की है-विहिता और अविहिता। अविहिता भक्ति चार प्रकार की है-कामजा, द्वेषजा, भयजा और स्नेहजा। विहिता भक्ति दो प्रकार की है-फलरूपा और साधनरूपा।

तत्र साधनरूपा द्विविधा-ज्ञानाङ्गभूता स्वातन्त्र्यमुक्तिदायिकी चेति तत्र मुक्तिदायिकी तूक्ता।। ज्ञानांगभूता च द्विविधा सगुणा निर्गुणा चेति। तत्र निर्गुणा यथा मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गांभसोऽम्बुधौ।। लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्याप्युदाहृतमित्यत्र युक्ता।

ज्ञानाङ्गभूता और स्वातन्त्र्यमुक्तिदायिकी के भेद से साधनरूपा भक्ति दो प्रकार की है। इनमें से मुक्तिदायिकी भक्ति के सम्बन्ध में पहले बताया गया। यहाँ ज्ञानाङ्गभूता साधनरूपा भक्ति को बताते हैं। ज्ञानाङ्गभूता भक्ति सगुणा एवं निर्गुणा के भेद से दो प्रकार की है। निर्गुणा भक्ति के लक्षण स्वयं भगवान् कपिल श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में कहते हैं--

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ।
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्याप्युदाहृतम्
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे।।३/२९/११/१२

जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवण मात्र से मन की गति का तैलधारवत् अविच्छिन्न रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना, यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है।

सगुणा भक्तिस्त्रिविधा ज्ञानमिश्रा वैराग्यमिश्रा कर्ममिश्रा चेति।। तत्र ज्ञानमिश्रा त्रिविधा, उत्तमा मध्यमा कनिष्ठा च।। यथोक्तं महर्षिभिः सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवत्भावमात्मनः भूतानि भगवत्यात्मन्येष

भागवत्तोत्तमः।।

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः।। अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।। न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृत इति।। वैराग्यमिश्रा यथा न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः।। वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः।।

सगुणा भक्ति तीन प्रकार की है-ज्ञानमिश्रा, वैराग्यमिश्रा एवं कर्ममिश्रा। उनमें उत्तमा, मध्यमा एवं कनिष्ठा के भेद से ज्ञानमिश्रा भक्ति पुनः तीन प्रकार की है। इन तीन प्रकार की भक्तियों से युक्त तीन प्रकार के भक्त के लक्षण श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध में दूसरे अध्याय के ४५, ४६, ४७ वें श्लोकों में इस प्रकार बताया गया है--

आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियों में आत्मा रूप से स्थित हैं। जो कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ता को ही देखता है और साथ ही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप भगवान् में ही देखता है उसे भगवान् का परम प्रेमी उत्तम भागवत समझना चाहिए।

जो भगवान् से प्रेम, उनके भक्तों से मित्रता, दुखी और अज्ञानियों पर कृपा और भगवान् से द्वेष करने वालों की उपेक्षा करता है वह मध्यम कोटि का भक्त है।

जो भगवान् के अर्चा विग्रह-मूर्ति आदि की पूजा तो श्रद्धा से करता है परन्तु भगवान् के भक्तों या दूसरे लोगों की विशेष सेवा शुश्रूषा नहीं करता ऐसा कनिष्ठा भक्ति से युक्त भक्त साधारण श्रेणी का है।

इसी प्रकार वैराग्यमिश्रा भक्तियुक्त भक्त का लक्षण बताते हैं-जिसके मन में विषयभोग की इच्छा कर्मप्रवृत्ति और उनके बीज वासनाओं का उदय नहीं होता और जो एकमात्र भगवान् वासुदेव में ही निवास करता है वह उत्तम भगवद्भक्त है। (श्रीमद्भा. ११/२/५०)

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषरर्द्धमपि स वैष्णवाग्र्य इति।। कर्ममिश्रा भक्तिस्त्रिविधा सात्विकी राजसी तामसी चेति। तत्र तामसी त्रिविधा-तामसकनीयसी तामसमध्यमा तामसोत्तमा चेति।। तत्र

हिंसार्थतामसकनीयसी दम्भार्थतामसमध्यमा। मात्सर्य्यार्थतामसोत्तमा।। यथोक्तं श्रीभागवते।। अभिसन्धाय यद्धिंसां दम्भमात्सर्य्यमेव च।। संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयिकुर्यात्स तामस इति। राजसी चापि त्रिधा राजसाधमा राजसमध्यमा राजसोत्तमा चेति।। सुखार्था राजसाधमा यशोऽर्था राजस-मध्यमा ऐश्वर्यार्था राजसोत्तमा। आह च भगवान्कपिलः, विषयानभिस-न्धाय यश ऐश्वर्यमेव च।। अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजस इति। एवं सात्विकी चापि त्रिधा कर्मक्षयार्था सात्विकाधमा।। भगवत्प्रीति-प्रयोजना सात्विकमध्यमा। भगवदाज्ञार्थाध्रुवाभक्तिः सात्विकोत्तमा। यथाह भगवान् कपिलः, कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा तदर्पणम्, यजेद्यष्टव्य-मिति वा पृथग्भावः स सात्विक इति। एवं साधनरूपा भक्तिर्निरूपिता।

वैराग्यमिश्रा भक्ति के और भी लक्षण बताते हैं-बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरण को भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें ढूँढते रहते हैं, भगवान् के ऐसे चरण कमलों से आधे क्षण के लिए भी जो नहीं हटता निरन्तर उन चरणों की सन्निधि और सेवामें ही संलग्न रहता है, यहाँ तक कि कोई स्वयं उसे त्रिभुवन की राज्यलक्ष्मी दे तो भी वह भगवत्स्मृति का तार नहीं तोडता वही पुरुष वास्तव में भगवद्भक्त वैष्णवों में अग्रगण्य है। (श्रीमद्भा. ११/२/५३)

कर्ममिश्रा भक्ति भी तीन प्रकार की है- सात्विकी, राजसी और तामसी। उनमें तामसी फिर तीन प्रकार की है-तामसकनीयसी, तमसमध्यमा और तामसोत्तमा। हिंसायुक्त भक्ति तामसकनीयसी कही गई है और दम्भ अथवा पाखण्ड के लिए की जाने वाली भक्ति तामसमध्यमा है एवं ईर्ष्या से की जाने वाली भक्ति तामसोत्तमा है। इसी प्रकार राजसी भक्ति भी राजसाधमा, राजसमध्यमा एवं राजसोत्तमा के भेद से तीन प्रकार की है। इनमें सुख की कामनायुक्त भक्ति राजसाधमा, यश की कामनायुक्त भक्ति राजस-मध्यमा और ऐश्वर्य की कामना वाली भक्ति राजसोत्तमा कही गई है। सात्विकी भक्ति भी सात्विकाधमा, सात्विकमध्यमा और सात्विकोत्तमा के भेद से तीन प्रकार की है। कर्मबन्धन को क्षीण करने के लिए जो भक्ति होती है उसे सात्विकाधमा कहते हैं। सात्विकमध्यमा भक्ति भगवत्प्रेम के लिए एवं

सात्विकोत्तमा भक्ति भगवान् की आज्ञा का पालन करने के लिए निश्चला भक्ति होती है।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में भगवान् कपिल के द्वारा तामसी, राजसी एवं सात्विकी भक्ति के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं--

अभिसन्धाय यद्धिंसां दम्भमात्सर्यमेव च
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः।। (३/२९/८)

जो भेददर्शी क्रोधी पुरुष हृदय में हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य का भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है, वह मेरा तामस भक्त है।

विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः। (३/२९/९)

जो पुरुष विषय, यश और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में मेरा भेद भाव से पूजन करता है, वह राजस भक्त है।

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परिस्मिन् वा तदर्पणम्
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्विकः। (३/२९/१०)

जो पुरुष कर्मक्षय के लिए, परमात्मा को अर्पण करने के लिए, और पूजन करना कर्तव्य है इस बुद्धि से मेरा भेद भाव से पूजन करता है वह सात्विक भक्त है। इस प्रकार साधनरूपा भक्ति का निरूपण पूर्ण हुआ।

यद्वाऽयं विभागः भक्तिस्त्रिविधा सात्विकी राजसी तामसी चेति आसु तिसृषु मिथोगुणमिश्रतया त्रिशो भेदास्तासु च यथोत्तरं श्रैष्ठ्यं एवं हि श्रवणादिषु नवशोऽपि नवशो भेदाः। सैवं सगुणा भक्तिरेकाशीतिभेद-युक्ता निर्गुणा तु भक्तिरेकैवेति।

अथवा साधनरूपा भक्ति का विभाग इस प्रकार भी कर सकते हैं। इसके मुख्य तीन प्रकार हैं-सात्विकी, राजसी और तामसी फिर इनमें से प्रत्येक के अधमा, मध्यमा एवं उत्तमा के भेद से तीन-तीन विभाग करने से इनकी संख्या नौ होती हैं। इनमें उत्तरोत्तर भक्ति की श्रेष्ठता बतलायी गई है। इन नौ प्रकार की भक्ति में से प्रत्येक की श्रवणकीर्तनादि नौ-नौ भेद करने से इनकी पूर्ण संख्या इक्यासी (८१) होती है। निर्गुणा भक्ति तो एक ही प्रकार की है।

अथ फलरूपा। आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।। कुर्वन्त्यहेतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायिणिः।। अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः। सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।। दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।। स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।। येनातिव्रज्य त्रिगुणान्मद्भावायोपपद्यते।

अब फलरूपा भक्ति का निरूपण करते हैं। भगवान् के गुण ऐसे हैं जिसके कारण जिनके जड चेतन ग्रन्थि खुल चुकी है ऐसे आत्माराम मुनिजन भी भगवान् श्रीहरि की अहैतुकी भक्ति करते रहते हैं। श्रीशुकदेवजी आत्माराम मुनियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्होंने भी श्रीहरि के गुणों से आकृष्ट होकर वैष्णवों के प्रिय श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया। भगवान् कपिल कहते हैं-मेरे निष्काम भक्त मेरे द्वारा दिए जाने पर भी मेरी सेवा को छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नहीं लेते। भगवत्सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करने वाला यह भक्तियोग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्यश कहा गया है। इसके द्वारा मेरे भक्त तीनों गुणों को लांघकर मेरे भाव को, मेरे प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्।। न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाच्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः। नात्यंतिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किं त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते।। येऽङ्ग त्वदंघ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः।। न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।। न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समंजस त्वा विरहय्य कांक्षे।। तत्सर्वं भक्तियोगेन मद्भक्त लभतेऽञ्जसा।। न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम।। वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्।

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयः समनल्पकम्।। तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत्।। राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः।। अस्त्वेवमङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगमित्यादौ प्रेमलक्षणाभक्तिः फलरूपासुदुर्लभेति निरूपिता।

फलरूपा भक्ति की महिमा ऐसी है कि युद्धक्षेत्र में निरत वृत्रासुर प्रार्थना करता है- हे भगवन्, मैं आपको छोड़कर स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक, सम्पूर्ण पृथ्वी का साम्राज्य, रसातल आदि का अधिकार, योग की सिद्धियां अथवा मोक्ष तक की कामना नहीं करता।। (श्रीमद्भा. ६/११/१५)

सनकादि ब्रह्मर्षिगण कहते हैं-प्रभो, आपका सुयश अत्यन्त कीर्तनीय और सांसारिक दुःखों की निवृत्ति करने वाला है। आपके चरणों की शरण में रहने वाले जो महाभाग आपकी कथाओं के रसिक हैं वे आपके आत्यन्तिक प्रसाद मोक्ष पद को भी कुछ अधिक नहीं गिनते, फिर जिन्हें आपकी जरा सी टेढी भौंह ही भयभीत कर देती है उन इन्द्रपद आदि अन्य भोगों के विषय में तो कहना ही क्या है। (श्रीमद्भा. ३/१५/४८)

भगवान् भी स्वयं कहते हैं--

तत्सर्वं भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद् यदि वाञ्छति।
न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम
वांछन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्।

(श्रीमद्भा.११/२०/३३-३४)

मेरा भक्त यदि कामना करता है तो स्वर्ग, अपवर्ग तथा मेरा धाम भी मेरे भक्तियोग के प्रभाव से ही अनायास प्राप्त कर सकता है। परन्तु मेरे अनन्य प्रेमी एवं धैर्यवान् साधु भक्त स्वयं तो कुछ चाहते नहीं, यदि मैं स्वयं कुछ देना चाहूँ अथवा दूँ तो भी और वस्तुओं की तो बात ही क्या वे कैवल्य-मोक्ष भी नहीं लेना चाहते।

सबसे श्रेष्ठ एवं महान् निःश्रेयस (परम कल्याण) तो निरपेक्षता का दूसरा नाम है। इसलिए जो निष्काम और निरपेक्ष होता है, उसी को मेरी भक्ति प्राप्त होती है। (श्रीमद्भा. ११/२०/३५)

श्रीशुकदेवजी परीक्षित को फलरूपा भक्ति की अत्यन्त दुर्लभता का वर्णन करते हुए कहते हैं--

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां, दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः।

अस्त्वेवमङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम्।
(श्रीमद्भा. ५/६/१८)

राजन्, भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डव लोगों के और यदुवंशियों के रक्षक, गुरु, इष्टदेव, सुहृद और कुलपति थे। यहाँ तक कि वे कभी-कभी आज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे। इसी प्रकार भगवान् दूसरे भक्तों के भी अनेक कार्य कर सकते हैं और उन्हें मुक्ति भी प्रदान करते हैं परन्तु मुक्ति से भी बढकर जो भक्तियोग है उसे सहज में नहीं देते।

इत्यादि लक्षणों से प्रेमलक्षणा भक्ति जो फलरूपा है वह अत्यन्त दुर्लभ है यह निरूपित हुआ।

अथ भगवद्भक्तिमहिमा।। १ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।। कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्।। २ त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि। यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किङ्कोवार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः।। ३ अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयं प्रसादलेशानुगृहीत एव हि, जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो नचान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्। पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पिते हानिजकर्मलब्धया।। विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते परांगतिम्।। ५ सध्रीचीनो ह्ययं लोके पंथा क्षेमो कुतोभयः।। सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः। ६ पानेन ते देवकथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये।। वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथांजसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम्।। ७ नालं द्विजत्वदेवत्वमृषित्वं वा सुरात्मजाः।। प्रीणनाय मुकुन्दस्य न व्रतं न बहुज्ञता।। ८ न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।। प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडं-वनम्।। ९ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।। न स्वाध्यायस्त-पस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।। १० भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।। भक्तिः पुनाति मन्निष्ठां श्वपाकान्नपि सम्भवात्।। ११ वाग्गद्गदाद्रवते यस्य चित्तं हसत्यभीक्ष्णं रुदति क्वचिच्च।। विलज्ज उद्-गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति १२ यथाग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम्।। आत्मा तु कर्मानुशयं विधूय

मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्।। १३ नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः।। ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथाभक्तिमतामिह।। १४ अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।। १५ नह्यतोऽन्यः शिवः पंथा विशतः संसृताविह।। वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्।। १६ भवान् भक्तिमता लभ्यः दुर्लभः सर्वदेहिनाम्।। १७ यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथित-मुद्ग्रथयन्ति संतः।। तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्धस्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम्। गीतासु १८ पुरुषः स परः पार्थ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।। १९ न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।। एवं रूपं शक्यमहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।। २० नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया, शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।२१।। भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं-विधोऽर्जुन।। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।

भगवद्भक्ति की महिमा का वर्णन करते हैं-देवर्षि श्रीनारदजी कहते हैं-वह निर्मल ज्ञान भी जो मोक्ष की प्राप्ति का साक्षात् साधन है, यदि भगवान् की भक्ति से रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर साधन और सिद्धि दोनों ही दशाओं में जो सदा ही अमङ्गलरूप है वह काम्य कर्म और जो भगवान् को अर्पण नहीं किया है ऐसा निष्काम कर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता है?।।१।।

जो मनुष्य अपने धर्म का परित्याग करके भगवान् के चरण कमलों का भजन-सेवन करता है, भजन परिपक्व हो जाने पर तो बात ही क्या है यदि इससे पूर्व ही उसका भजन छूट जाय तो क्या कहीं भी उसका अमङ्गल हो सकता है? परन्तु जो भगवान् का भजन नहीं करते और केवल स्वधर्म का पालन करते हैं उन्हें कौन सा लाभ मिलता है?।।२।।

(श्रीमद्भा. १/५/१२, १७)

आदि पुरुष सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी कहते हैं-हे भगवन्, आपके ज्ञान की महिमा ऐसी है जिससे अज्ञानकल्पित जगत् का नाश हो जाता है, फिर भी जो पुरुष आपके युगल चरणकमलों का तनिक सा भी कृपाप्रसाद प्राप्त कर लेता है वही आपकी सच्चिदानन्दमयी महिमा का तत्त्व जान सकता है। दूसरा

कोई भी ज्ञान-वैराग्यादि साधनरूप अपने प्रयत्न से बहुत काल तक कितना भी अनुसन्धान करता रहे, वह आपकी महिमा का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता।।३।। (श्रीमद्भा. १०/१४/२९)

हे अच्युत, इस लोक में पहले भी बहुत से योगी हो गये हैं। जब उन्हें योगादि के द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई तब उन्होंने अपने लौकिक और वैदिक समस्त कर्म आपके चरणों में समर्पित कर दिये। उन समर्पित कर्मों से तथा आपकी लीला कथा से उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई। उस भक्ति से ही आपके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बडी सुगमता से आपके परम पद की प्राप्ति कर ली।।४।। (श्रीमद्भा. १०/१४/५)

संसार में जहाँ नारायणपरायण सुशील भगवज्जन चलते हैं वही मार्ग अवलम्बन करने योग्य है क्योंकि यही मार्ग सुरक्षित, भयरहित और कल्याणप्रद हैं।।५।।

हे देव, आपके कथामृत का पान करने से उमडी हुई भक्ति के कारण जिनका अन्तःकरण निर्मल होगया है, वे लोग-वैराग्य ही जिसका सार है ऐसा आत्मज्ञान प्राप्त करके अनायास ही आपके वैकुण्ठधाम को चले जाते हैं।।६।। (श्रीमद्भा. ३/५/४५)

भगवान् मुकुन्द को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण कुल में जन्म लेना, देवयोनि प्राप्त करना, ऋषित्व, व्रत अथवा बहुज्ञता पर्याप्त नहीं है। क्योंकि भगवान् श्रीहरि अमला भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। दान, तप, यज्ञ, शौच, व्रतादि तो मात्र विडम्बना हैं।।७-८।।

भगवद्वचन हैं-हे उद्धव, योगसाधन, ज्ञानविज्ञान, धर्मानुष्ठान, जपपाठ और तपत्याग मुझे प्राप्त कराने में उतने समर्थ नहीं हैं जितनी दिनोंदिन बढने वाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति। मैं सन्तों का प्रियतम आत्मा हूँ। मैं अनन्य श्रद्धा और अनन्य भक्ति से ही पकड में आता हूँ। मुझे प्राप्त करने का यह एकमात्र उपाय है। मेरी अनन्य भक्ति उन लोगों को भी पवित्र कर देती है जो जन्म से ही चाण्डाल है।।९-१०।। (श्रीमद्भा.११/१४/२०-२१)

जिसकी वाणी प्रेम से गद्गद् हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है, निरन्तर रोने का भाव है, परन्तु जो कभी-कभी हँसने लगता है, कभी लज्जा संकोच छोड़कर गाता और नाचता है ऐसा मेरा भक्त न केवल अपने को अपितु सारे संसार को पवित्र कर देता है। जैसे आग में तपाने पर सोना मैल छोड़ देता है और अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है वैसे ही मेरे भक्तियोग के द्वारा आत्मा कर्मवासनाओं से मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त हो जाता है। क्योंकि मैं ही उसका वास्तविक स्वरूप हूँ।।११-१२ (श्रीमद्भा. ११/१४/२४-२५)

भगवान् के ऊखलबन्धन की कथा सुनाने के बाद श्रीशुकदेवजी कहते हैं-यह गोपिकानन्दन भगवान् अनन्यप्रेमी भक्तों के लिए जितने सुलभ हैं उतने देहाभिमानी, कर्मकाण्डी एवं तपस्वियों को तथा अपने स्वरूपभूत ज्ञानियों के लिए भी नहीं हैं।।१३।। (श्रीमद्भा.१०/९/२१)

कोई निष्काम हो अथवा कोई सब कुछ प्राप्त करने की कामना रखता हो या कोई उदार बुद्धिवाला मोक्ष की कामना करता हो इन सबको तीव्र भक्तियोग से भगवान् का भजन करना चाहिए। इस संसार में पड़े जीवों के लिए जिस मार्ग से भगवान् वासुदेव में भक्तियोग हो वही कल्याणकारी एवं सुखद मार्ग है। इसके अतिरिक्त सुखदायी अन्य मार्ग नहीं है।।१४-१५।।

आप सम्पूर्ण दोहाभिमानी प्राणियों को दुर्लभ हो परन्तु भक्तों को अत्यन्त सुलभ हो।।१६।।

सन्त-महात्मा जिनके चरणकमलों के अंगुलिदल की छिटकती हुई छटा का स्मरण करके अहंकार रूप हृदयग्रन्थि को जो कर्मों से गठित है, इस प्रकार छिन्नभिन्न कर डालते हैं कि समस्त इन्द्रियों का प्रत्याहार करके अपने अन्तःकरण को निर्विषय करने वाले संन्यासी भी वैसा नहीं कर पाते। तुम उन सर्वाश्रय भगवान् वासुदेव का भजन करो।।१७।। (श्रीमद्भा.४/२२/३९)

और भी श्रीमद्भगवद् गीता से भगवद्वचन प्रस्तुत करते हैं--

अर्जुन! वह परब्रह्म परमात्मा को तुम अनन्य भक्ति से प्राप्त कर सकते हो।।१८।। (गीता ८/२२)

अर्जुन! मनुष्यलोक में इस प्रकार विश्वरूप वाला मैं न वेद और यज्ञ

से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तप से ही तेरे अतिरिक्त दूसरों के द्वारा देखा जा सकता हूँ।।१६।। (गीता ११/४८)

जिस प्रकार चतुर्भुज रूप से तुमने मेरा दर्शन किया इस स्वरूप को न वेदों से, न तप से और न यज्ञ से ही देखा जा सकता है।।२० (गीता ११/५३)

हे अर्जुन, अनन्य भक्ति के द्वारा मैं प्रत्यक्ष देखने के लिये, तत्त्व से जानने के लिये तथा प्रवेश करने के लिए शक्य हूँ।।२१।। (गीता ११/५४)

एवंभूतभगवद्भक्तिप्राप्तये श्रीमद्भागवतभक्तैः श्रोतव्यं च सदादरात्। तदुक्तं एवं भागवतं श्रुत्वा कृष्णभक्तिविभेदकृत्।। ततः प्रमुदितैर्भक्तैस्ताल-वीणादि भूषितैः।। कारयेद्गीतनृत्यादिकुर्यादानंदयन्स्वयम्।। आदावंतेकथा-यान्तु कीर्त्तयेयुः सदा हरिम्।। संस्कृतैर्भाषाबद्धैश्च पद्यै रम्यै रसायनैः।। आह च भगवान्नारदः इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।। अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानु-वर्णनमिति।

इस प्रकार की महिमाशालिनी भक्ति प्राप्त करने के लिए भक्तों को चाहिए कि श्रीमद्भागवत का नित्य आदरपूर्वक श्रवण करें। कहा भी है- भगवान् श्रीकृष्ण के भेदों को बताने वाली भागवत कथा का श्रवण करके प्रसन्न चित्त से ताली, वीणा आदि बजाते हुए स्वयं कीर्तन तथा नृत्य करें। कथा के आदि तथा अन्त में सदा भगवन्नाम का कीर्तन करें। संस्कृत भाषा में आबद्ध सुन्दर पद्यों का गान करें जिनमें श्रीहरि के गुणानुवाद वर्णित हों। भगवान् श्रीनारदजी ने कहा- विद्वानों ने इस बात की निरूपण किया है कि तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दान का एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यकीर्ति श्रीकृष्ण के गुणों का और लीलाओं का वर्णन किया जाय।

इस प्रकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्यप्रणीत सिद्धान्तरत्नाञ्जलि में यह भक्ति प्रकरण समाप्त हुआ।

भक्तिरस प्रकरण

अथ भक्तेः पंचरसाः शांतं दास्यं च वात्सल्यं सख्यमुज्ज्वलमेव च। अमी पंचरसा मुख्या ये प्रोक्ता रसवेदिभिः। विभावानुभावसात्विक संचारिभिः हरिरतिरिति स्थायीभावाख्य भक्तिरसो भवति।। यद्विषयको भावः स विषयालम्बनविभावः।। यथा श्रीकृष्णः।। यो भावस्याधिकरणं स आश्रयालम्बविभावो यथा श्रीकृष्णभक्तः।। ये स्मारका भूषणालंका-रादयस्ते उद्दीपनविभावाः।। ये भावज्ञापका गीतनृत्यादयस्तेऽनुभावाः।। ये चित्तादिक्षोभकास्ते सात्विकाः।। ते चाष्टौ स्तंभ,-स्वेद,-रोमाञ्च,-वेपथु,-स्वरभंग,-वैवर्ण्य,-अश्रुपुलका। रति,-निर्वेद-हर्ष,-गर्व,-मद,-वितर्क,-मोहादयो व्यभिचारिणः।।

इस प्रकरण में भक्ति के पांच रसों का वर्णन करते हैं। भक्ति के पांच रस हैं-शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और उज्ज्वल। रस के विद्वान् मनीषियों ने इन्हीं पांच प्रकार के मुख्य रसों का वर्णन किया है। विभाव, अनुभाव, सात्विक, और संचारी के द्वारा हरिरतिरूप स्थायीभाव नामक भक्तिरस होता है। जिस विषय का भाव हो उस विषय के आलम्बन को विभाव कहते हैं, जैसे श्रीकृष्ण। जो भाव का अधिकरण हो उसे आश्रयालम्बन विभाव कहते हैं। जैसे-श्रीकृष्ण के भक्त। स्मरण कराने वाले जो आभूषण अलंकारादि हैं उनको उद्दीपन विभाव कहा जाता हैं। भाव का ज्ञान कराने वाले जो गीत, नृत्यादि हैं उनको अनुभाव कहते हैं। चित्त में क्षोभ उत्पन्न कराने वाले सात्त्विक भाव हैं। सात्त्विक भाव आठ प्रकार के हैं-स्तंभ (निश्चल होना), स्वेद (पसीना), रोमांच, वेपथु (कम्पन), सुरभंग, वैवर्ण्य (रंग उडना), अश्रू और पुलक। रति, निर्वेद, हर्ष, गर्व, मद, वितर्क, मोह आदि व्यभिचारिभाव हैं।

तत्र शान्तिभक्तिरसे निखिलजगदेककर्ता परात्मा नारायण पर-ब्रह्मनराकृतिश्चतुर्भुजः श्रीकृष्णविषयालम्बनः अनन्तानवद्यसर्वज्ञसत्य-संकल्पत्वादिकल्याणगुणाकरः अनवधिकातिशयानंदस्वरूपः शंकरेन्द्रादयो देवाः आश्रयालंबनाः। उपनिषद्विचारादय उद्दीपनविभावाः नासाग्रदृष्ट्या-

दयोनुभावः प्रलयवर्जिता अश्रुपुलकरोमांचाख्याः सात्विकाः। निर्वेद-स्मृत्यादयः संचारिणः। शांतिस्थायीति।

शान्त भक्तिरस में निखिल जगदेककर्ता परमात्मा नारायण परब्रह्म नराकृति चतुर्भुज स्वरूप श्रीकृष्ण विषयालम्बन विभाव हैं जो अनंत, निर्दोष, सर्वज्ञ, सत्यसंकल्प आदि कल्याण गुणों के सागर हैं और अतिशय आनन्दस्वरूप हैं। शंकर, इन्द्रादिक देवता आश्रयालम्बन विभाव हैं। उपनिषद् विचार आदि उद्दीपन विभाव हैं। नासिका के अग्रभाग में देखना (ध्यान लगाना) आदि अनुभाव हैं। प्रलय को छोड़कर अश्रु, पुलक, रोमांचादि सात्त्विक भाव हैं। निर्वेद, स्मृति आदि संचारी भाव हैं। शान्ति भक्तिरस में स्थायी भाव है।

दास्यरसे तु सर्वेश्वरः सर्वशक्तिः परमकारुणिकः शरणागतपालकः भक्तवत्सलः प्रभुः श्रीकृष्णो विषयालम्बनः। अर्जुनोद्धवपरीक्षिदादय आश्रयालम्बनाः। भक्ततुलसीपदचिह्नगुणगोपीचन्दनोच्छिष्टस्रग्गंध-माल्यादय उद्दीपनविभावाः। श्रीकृष्णोक्तकरुणादयोऽनुभावाः। स्तंभा-दयोऽष्टौ सात्विक्काः। हर्षगर्वादयो हि संचारिणः। स्नेहादि स्थायी श्री-कृष्णवियोगे तु दश दशा (१) अंगेषु ताप २ कृशता ३ जगत्यालम्बः ४ शून्यता ५ अधृति ६ जडता ७ व्याधि ८ रुन्मादो ९ मूर्छित १० मृतीति।

दास्य भक्तिरस में सर्वेश्वर सर्वशक्ति परमकारुणिक शरणागत पालक भक्तवत्सल प्रभु श्रीकृष्ण विषयालम्बन विभाव हैं। अर्जुन, उद्धव, परीक्षित आदि शरणागत भक्त आश्रयालम्बन विभाव हैं। भक्त, तुलसी, पदचिह्न, गुण गोपीचन्दन, उच्छिष्ट स्रग्गन्ध, माल्य आदि उद्दीपन विभाव हैं। श्रीकृष्णोक्त करुणादि अनुभाव हैं। स्तंभ, स्वेद आदि सात्त्विक और हर्ष, गर्व आदि संचारिभाव हैं। स्नेह आदि स्थायी भाव हैं। श्रीकृष्ण के वियोग में दश दशाएं होती हैं जो इस प्रकार हैं-अंगों में ताप, दुबला हो जाना, पृथ्वी का आश्रय, शून्यता, अधैर्य, जडता, रोग, उन्माद, मूर्च्छा और मरण।

एवं सख्यरसेऽपि चतुरशिरोमणिः सत्यसंकल्पो मेधावी सुन्दर सुवेशो द्विभुजः श्रीकृष्णो विषयालंबनः मधुमंगलसुबलनामानः सखादयोऽ-नेकविधाः सखाय आश्रयालंबनाः। शृंगवेत्रादयश्चोद्दीपनविभावाः। एक-

शय्यासनभोज्यविविधविचित्रपरिहासविहारवाह्यवाहकादिकेलिप्रभृतयो-ऽनुभावाः। स्तंभादयोऽष्टौ सात्विकाः। हर्षगर्वाद्याः संचारिणः। सख्यरति-स्थायीभावः। दशदशा पूर्ववत्।।

सख्य भक्तिरस में चतुरशिरोमणि सत्यसंकल्प मेधावी सुन्दर वेश धारण किये हुये द्विभुज नराकृति श्रीकृष्ण विषयालम्बन विभाव हैं। मधुमंगल, सुबल आदि अनेक सखा आश्रयालम्बन विभाव हैं। शृंग, वेत्र, वेणु आदि उद्दीपन विभाव हैं। एक शय्या पर सोना, एक आसन पर बैठना, साथ में भोजन, अनेक प्रकार के विचित्र परिहास, विहार, चढाचढी का खेल आदि अनुभाव हैं। स्तंभादि आठ प्रकार के सात्त्विक, हर्षगर्वादि संचारी पूर्ववत् हैं। सख्यरति स्थायीभाव है। दास्यरस के समान श्रीकृष्ण के वियोग में दश दशाएं पूर्ववत् हैं।

अथ वात्सल्यरसः। वात्सल्यरसे तु कोमलांगः कलभाषणः सर्वलक्षणसंयुतः कौमारः लाल्यः बाल्यः श्रीकृष्णविषयालम्बनः। नन्दो-पनन्दरोहिणीयशोदाद्या आश्रयालम्बनाः। स्मितजल्पितचेष्टिताद्या उद्दीपनविभावाः। अंगाभिमार्जनाशीर्वादनिदेशलालनपालनादयो-ऽनुभावाः। अत्राष्टौ सात्विकाः स्तनश्रुवस्तुविशेषः। हर्षशोकाद्या व्यभिचारिणः वात्सल्यं स्थायी। वियोगे दशदशा तु पूर्ववत्।

वात्सल्य भक्तिरस में सुकोमल अंगवाले मनोहर वचन सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त सुकुमार लाल्यबाल्य श्रीकृष्ण विषयालम्बन विभाव हैं। नन्द, उपनन्द, रोहिणी, यशोदा आदि आश्रयालम्बन विभाव हैं। मधुर मुस्कान, बालोचित बोली, चपलता आदि उद्दीपन विभाव हैं। स्नान कराना, आशीर्वाद, उपदेश वा आज्ञा, लालन-पालन आदि अनुभाव हैं। यहां आठ प्रकार के स्तंभादि सात्त्विक भाव रहते हैं इनके अतिरिक्त वात्सल्य भक्तिरस में स्तनों से दूध का बहना विशेष सात्त्विक भाव है। वात्सल्य स्थायीभाव है। हर्षगर्वादि संचारितभाव एवं श्रीकृष्ण वियोग में दशदशा पूर्ववत् समझना चाहिए।

शुक्लरसे च सर्वमाधुर्यवान्कमनीयकिशोरमूर्त्तिः श्रीकृष्णो विषयालंबनः। श्रीकृष्णप्रिया आश्रयालंबनाः गुणवंशीरववसंतकोकि-

लाद्या उद्दीपनाः। कटाक्षस्मितादयोऽनुभावाः। सर्वेऽपि सात्त्विकाः। आलस्यौग्रहीना निर्वेदादयो व्यभिचारिणः प्रियता रतिस्थायी।

हास्यादीनामत्रैवान्तर्भावत्वात् पंचैव रसाः।

उज्ज्वल भक्तिरस को शुक्लरस भी कहा जाता है। इसमें सर्वमाधुर्यवान् कमनीय किशोर स्वरूप श्रीकृष्ण विषयालम्बन विभाव हैं। श्रीकृष्ण के प्रिया आश्रयालम्बन विभाव हैं। गुण, वंशी का निनाद, वसन्त, कोकिल आदि उद्दीपन विभाव हैं। कटाक्ष, मन्दहास्य आदि अनुभाव हैं। स्तंभादि सात्त्विक, आलस्य और उग्रता को छोड़कर निर्वेदादि व्यभिचारिभाव पूर्ववत् हैं। उज्ज्वल भक्ति रस में प्रियता वा रति स्थायी भाव है। हास्यादि रसों का इन्हीं में अन्तर्भाव होने से पांच ही रस हैं।

इति भक्तिरसप्रकरणम्।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति सर्वशास्त्रविधिसूत्रार्थं वदन्नुपसंहरति। उपास्यरूपमित्यादिना।

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पंच साधुभिः।।१०।।

इमे पंचाप्यर्थाः साधुभिर्ज्ञेया इत्यन्वयः। उपास्य श्रीकृष्णस्य रूपं निखिलजगदेककारणत्वं सर्वस्वरूपश्रेष्ठत्वं सर्वमाधुर्यत्वं अनंतानवद्यकल्याणगुणगणाकरत्वं अनन्यापेक्षमहिमैश्वर्यत्वादि। उपासकस्य जीवात्मनः तावद्रूपं शरीरेन्द्रियादिभ्योऽन्यत्वं प्रपन्नत्वादि। एते जीवात्मपरमात्मरूपे पूर्वं निरूप्येते। कृपाफलं तु श्रीभागवते प्रोक्तं चतुर्थे। यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्मभावितः स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्। मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्। तद्ब्रह्मपरमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकमित्यादिना। एतदपि निरूपितं प्राक्। ततो भक्तिरसः शान्तादि सोऽपि निरूपितः। एतदाप्तः श्रीकृष्णप्राप्तेर्विरोधिनः प्रतिबन्धकस्य रूपं भक्तापराधत्वं विषयासक्तत्वम् उचितस्य परित्यागो अनुचितस्य करणं दिग्विद्धैकादशीव्रतमित्यादि।

''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' इस ब्रह्मसूत्र में वर्णित सम्पूर्ण शास्त्र विधि

का परिवर्णन करते हुए वेदान्तदशश्लोकी के इस अन्तिम श्लोक के द्वारा शास्त्र का उपसंहार करते हैं--

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पंच साधुभिः।।१०।।

उपास्य और उपासक के स्वरूप, कृपाफल, भक्तिरस एवं भगवत्प्राप्ति में प्रतिबन्धकस्वरूप विरोधी तत्त्व इन पाँचों को साधुओं के द्वारा जानना चाहिए।

निखिल जगत् के एकमात्र कारणत्व सम्पूर्ण स्वरूपों में श्रेष्ठत्व सर्वमाधुर्यत्व अनन्तानवद्यकल्याणगुणगणाकरत्व अनन्यापेक्षत्व महिमा ऐश्वर्यत्वादि लक्षणयुक्त श्रीकृष्ण स्वरूप ही उपास्य है। शरीर तथा इन्द्रियों को ग्रहण करने वाला परन्तु इनमें भिन्न प्रपन्न भाव वाला जीवात्मा उपासक है। जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन दशश्लोकी के पहले तथा दूसरे श्लोक में और परमात्मा के स्वरूप का वर्णन चौथे और पाँचवें श्लोक में पहले ही किया जा चुका है। कृपाफल के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है--

हृदय में बार-बार चिन्तन किये जाने पर भगवान् जिस समय जिस जीव पर कृपा करते हैं उसी समय वह लौकिक व्यवहार एवं वैदिक कर्ममार्ग की बद्धमूल आस्था से मुक्त हो जाता है। (४/२९/४६)

भगवद्वचन हैं-मेरे शरणागत हो तो मुझसे मित्रता करता है उस पर मैं अवश्य अनुग्रह करूंगा जिससे वह मेरे परब्रह्म स्वरूप को जो सूक्ष्म चिन्मय सत् और अनन्त है उसे जाने।

कृपाफल और भक्तिरस का निरूपण पहले ही किया जा चुका है। श्रीकृष्ण प्राप्ति के विरोधी जो प्रतिबन्धक स्वरूप हैं वे इस प्रकार हैं-भक्तों के प्रति अपराध होने पर भक्ति से प्राप्त फल नष्ट हो जाते हैं। जैसे परम भागवत श्रीसनकादिक महर्षियों के प्रति अपराध करने से भगवान् के पार्षद जय विजय को तीन बार असुर योनि में जन्म लेना पड़ा। इसी प्रकार विषयों के प्रति आसक्ति, उचित का परित्याग, अनुचित कार्य में प्रवृत्ति विद्धा एकादशी का व्रत आदि भी विरोधी तत्त्व हैं।

मुक्तिस्तु निरतिशयानंदरूपा अविद्यानिवृत्तिर्वा। केचित्तु दुरित निवृत्तिमुक्तिरित्याहुः। आत्यंतिकदुःखनिवृत्तिरित्यपरे। सिद्धांते तु भक्तिरेव मुक्तिः तथाचोक्तं पाद्मे न कर्मबंधनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते। विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिण इति। निःशेषधर्मकर्त्ता वाप्यभक्तो नरके हरे सदा तिष्ठति भक्तस्ते ब्रह्महापि विमुच्यते। निश्चला हि त्वयि भक्तिः सैव मुक्तिर्जनार्दन।।

मुक्ति निरतिशय आनन्द है अथवा अविद्या की निवृत्ति मुक्ति है ऐसा भी कह सकते हैं। किसी के मत में पाप की निवृत्ति मुक्ति है तो कोई दुःख की अत्यन्तिक निवृत्ति को मुक्ति कहते हैं। भगवन्निम्बार्काचार्य के मत में तो भक्ति ही मुक्ति है। जैसे पद्मपुराण में कहा गया है-वैष्णवों के जन्मादि कर्मबन्धन नहीं होते। मनीषियों ने विष्णु के अनुचरत्व अर्थात् भक्ति को ही मुक्ति कहा है।

समग्र धर्म का पालन करने वाला भी यदि भक्त नहीं है तो वह नरक में पड सकता है परन्तु हे भगवन्, आपका भक्त ब्रह्मघाती भी हो तो मुक्त हो जाता है। हे जनार्दन, आप में मेरी निश्चला भक्ति हो क्योंकि वही मुक्ति है।

मुक्ता एव हि भक्तास्ते न सन्देहो यतो हरे इति स्कांदे। सालोक्य-सार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत। दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः। इति भागवते। सालोक्यं समानलोकवासः, सार्ष्टिः षड्गुणैश्वर्यम्, सामीप्यं निरंजनः परमं साम्यमुपैतीतिश्रुतेः। अथ प्रपत्ति श्रीभागवते। तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्। प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च। मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्। याहि सर्वात्मभावेन मयास्या ह्यकुतोभयः। श्रीमद्गीतासु। सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजेत्यादि सा च शरणागतिः षोढा आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूलस्य वर्ज्जनम्। रक्षिस्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिःक्षेपकार्प्पण्यं षड्विधा शरणागतिरिरिति कुमारोक्तेः।

जिनके साथ श्रीहरि सदा रहते हैं वे भक्त मुक्त ही है इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार स्कन्दपुराण में भी कहा गया है।

भगवान् कहते हैं--मेरे निष्काम भक्त मेरे द्वारा दिये जाने पर भी मेरी सेवा को छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नहीं लेते। भगवान् के साथ समान लोक में वास सालोक्य है। षड्विध ऐश्वर्य सहित मोक्ष का नाम सार्ष्टि है। भगवान् के समीप निवास सामीप्य, श्रीवत्स तथा भृगुपदचिह्न सहित भगवान् के समान रूप सारूप्य और भगवान् में लय होना सायुज्य मोक्ष हैं। श्रुति प्रमाण दर्शाते हैं-निरंजनः परमं साम्यमुपैति, अर्थात् उपाधिरहित परम समता को प्राप्त होता है।

अब प्रपत्ति अर्थात् शरणागति का निरूपण करते हैं। भगवान् कहते हैं--

तस्तात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च।।
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः।।
(११/१२/१४-१५)

उद्धव, तुम श्रुति-स्मृति, विधि-निषेध, प्रवृति-निवृति और सुनने योग्य तथा सुने हुए विषय का भी परित्याग करके सर्वत्र मेरी ही भावना करते हुए समस्त प्राणियों के आत्म स्वरूप मुझ एक की ही शरण सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करो। क्योंकि मेरी शरण में आ जाने से तुम सर्वथा निर्भय हो जाओगे।

गीता में भगवान् ने कहा है कि ''सर्वधमान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'' अर्थात् सम्पूर्ण धर्म को छोड़कर मुझ एक की शरण में आ जा। यह शरणागति छः प्रकार की है-१-भगवान् के अनुकूलता का संकल्प २-भगवान् के प्रतिकूलता का त्याग ३-भगवान् रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास ४-गोमृत्ववरण ५-आत्मसमर्पण और ६-कृपणता का भाव अर्थात् मेरा कुछ नहीं मैं कुछ नहीं ऐसा भाव।

शरणागतः श्रीभागवते-ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वान-पेक्षकः। सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वाचरेदविधिगोचरः। बुधो बालकवत्क्रीडेत् कुशलो जडवच्चरेत्। वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्यां नैगमश्चरेत्। वेदवादरतो न स्यान्न पाखंडीन हैतुकः शुष्कवादविवादेन कंचित्पक्षं समाश्रयेदित्या-

दिना। स्थिरसुफलमनल्पं वांछितं यो ददाति सकलगुणगणाढ्यो देव एकोऽद्वितीयः। तमिह शरणमीशं सांख्ययोगाभिगम्यं प्रणमति जन एष कृष्णचन्द्रं मुकुन्दम्।।१।। वृन्दावनेशस्य कृपाकटाक्षतो ग्रंथो हि सिद्धः श्रुतिसारभूतः। सिद्धान्तरत्नांजलिनामधेयस्तनोतु मोदं सनकानुयायिनाम्। इतिश्रीपरमहंसवैष्णवाचार्यश्रीहरिव्यासदेवविरचितं वेदान्तरत्नांजलौ चतुर्थः परिच्छेदः।।

इस प्रकार शरणागति का निरूपण कर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज निम्न दो श्लोकों में भगवान् की वन्दना करते हुए सिद्धान्तरत्नाञ्जलि ग्रन्थ का उपसंहार करते हैं--

स्थिरसुफलमनन्तं वाञ्छितं यो ददाति
सकलगुणगणाढ्यो देव एकोऽद्वितीयः।
तमिह शरणमीशं सांख्ययोगाभिगम्यं
प्रणमति जन एष कृष्णचन्द्रं मुकुन्दम्।।

जो मांगने पर अविनाशी अनन्त फल प्रदान करते हैं, जो सम्पूर्ण गुणों के समुद्र हैं, जो एक अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा हैं, जो सांख्ययोग के द्वारा जानने में आते हैं उन सबके शरण सर्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मुकुन्द को यह जन प्रणाम करता है।

वृन्दावनेशस्य कृपाकटाक्षतो
ग्रन्थो हि सिद्धः श्रुतिसारभूतः।
सिद्धान्तरत्नाञ्जलिनामधेय-
स्तनोतु मोदं सनकानुयायिनाम्।।

वृन्दावनेश श्रीकृष्ण के कृपाकटाक्ष से सिद्धान्तरत्नाञ्जलि नामक श्रुतिसारभूत यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। यह कृति सनकादि के अनुयायियों को आनन्द प्रदान करे।

इस प्रकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्यप्रणीत सिद्धान्तरत्नाञ्जलि का चतुर्थ परिच्छेद पूर्ण हुआ।
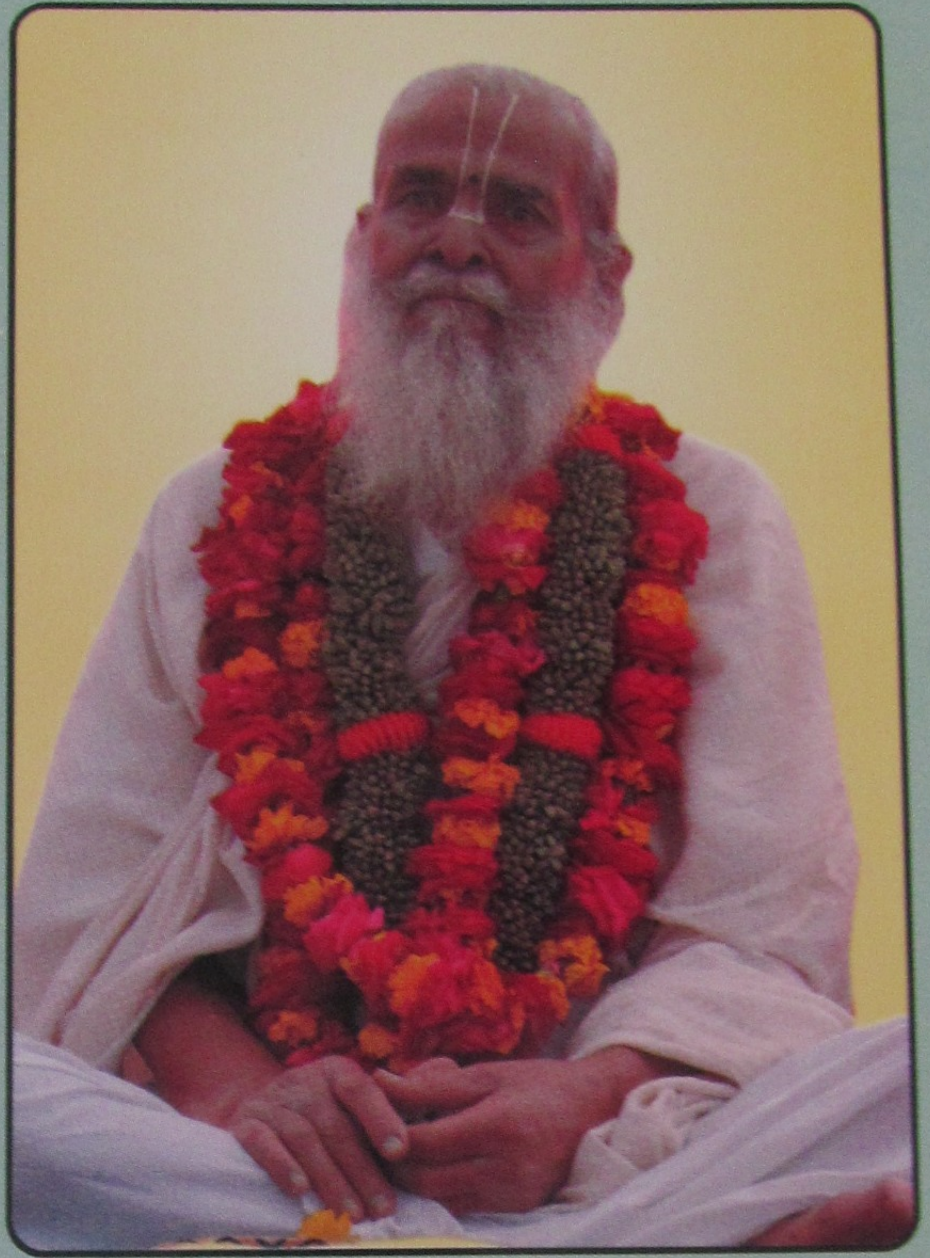
श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्र–चूड़ामणि, सर्वतन्त्र – स्वतन्त्र, द्वैताद्वैतप्रवर्तक, यतिपतिदिनेश, राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ,
निम्बार्कतीर्थ -सलेमाबाद

गोलोकवासी श्री दीनदयाल जी सोमानी
जयपुर

पुस्तक प्राप्ति स्थान

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ

श्रीनिम्बार्कतीर्थ – सलेमाबाद, जिला अजमेर (राज.)

फोन : 01497–227831

श्री सर्वेश्वर संसद

श्रीआनन्दकृष्णबिहारी मन्दिर, चांदनी चौक, जयपुर

प्रथमावृत्ति – 500 सं. 1983

द्वितीयावृत्ति – 1000 सं. 2073

मुद्रक
कम्प्यूटर क्राफ्ट, जयपुर

न्यौछावर
100 रुपये